प्रवचन

परमहंस श्री हंसानंद जी सरस्वती दण्डी स्वामी जी

विषय तालिका

CD # 59 - B * Jun 2013 *

SN	Title	Min	Coding			Contents	
1	01 Jun	53				वेद से गुरु ही श्रेष्ठ है क्योंकि गुरु ही स्वर-व्यंजन का ज्ञान कराता है। वेद त्रिकाण्डमय है - **'कर्म, भक्ति और ज्ञान'** तीन योग युक्त सम्पूर्ण वेद है। इसमें कक्षा क्रम है, कर्मयोग प्रथम, भक्तियोग द्वितीय तथा ज्ञानयोग तृतीय अन्तिम कक्षा है जिसमें वेद, गुरु और जीव का भी काम पूरा हो जाता है क्योंकि जीव जन्म-मरण से छूट जाता है। ज्ञानयोग से सबका काम पूरा हो जाता है। भगवान को पाने के लिये वेद पढ़ा था व ज्ञानयोग से वेद की पढ़ाई पूरी हो जाती है और फिर वेद, गुरु तथा जीव सभी का काम पूरा हो जाता है। तीसरी सीढ़ी के ऊपर तो भगवत् तत्त्व ही मिल जाता है, भगवान का दर्शन हो जाता है और दर्शन होते ही जीव ब्रह्म रूप हो जाता है - **'ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति'** - काम पूरा हो गया ** ये ज्ञान भगवान नारायण से ही चला है। सर्वप्रथम भ० नारायण ने ब्रह्मा को उत्पन्न किया और उन्हें शोक-मोह से ग्रस्त देखकर वेद का उपदेश किया। ब्रह्मा त्रिकाण्डमय वेद पढ़कर जन्म-मरण से मुक्त और परम सुख-शान्ति को प्राप्त हो गये फिर ये ज्ञान उन्होंने अपने पुत्र वशिष्ठ को दिया और गुरु-परम्परा आरम्भ हो गयी गृहस्थ शिष्य परम्परा वशिष्ठ ने पुत्र शक्ति → पुत्र पराशर → पुत्र व्यास → पुत्र शुकदेव सन्यासी शिष्य परम्परा → गौड़पादाचार्य → गोविन्दपादाचार्य → शंकराचार्य → ४ शिष्य - पद्मपादम, हस्तामलकं, तंत्रोटकम् और बालत्रिककारम् । गुरु-शिष्य परम्परा से जो ज्ञान भ० नारायण ने ब्रह्मा को दिया वही वेदज्ञान सृष्टि के आदि से अभी तक चला आ रहा है, उस ज्ञान की श्रृंखला टूटी नहीं । वेदव्यास जी ने महाभारत और १८ पुराणों के रूप में वेद का ही विस्तार कर दिया है, ज्ञान में कमी नहीं आयी है कर्मकाण्ड अपने-अपने वर्णाश्रम-पदाधिकार के अनुसार वेद में माता-पिता राजा-प्रजा, पिता-पुत्र, पति-पत्नि आदि सभी के धर्म कर्म बताये गये हैं। कर्म ही धर्म है, अपने-अपने कर्म को ही यज्ञ कहते हैं इनसे मन की शुद्धि होती है तै०उ० - *'मात्र देवो भव, पितृ देवो भव ... अश्रद्धया अदेयं '*। माता, पिता, गुरु और अतिथि को देवता बताया है। माता, पिता, गुरु को प्रातः प्रणाम करने से आयु, विद्या, यश और बल प्राप्त होता है (इन्द्रियों का बल शक्ति, मन का बल भक्ति और बुद्धि का बल ज्ञान है) - क्योंकि माता-पिता का आशीर्वाद आत्मा से निकलता है इसलिये अत्यधिक प्रभावशाली होता है।
2	02 Jun	34				**वेद भगवान के २ रूप बताता है - निनि० और ससा०** ** रामायण में भी ऐसा ही बताया है कि - जैसे अग्नि २ प्रकार की है निनि० और ससा० इसी प्रकार से भगवान का स्वरूप है। सारे संसार में काष्ठ कोयला ईंधन में एक अद्वितीय निनि० अग्नि व्यापक है जो दिखाई नहीं देती । प्रकट ससा० अग्नि का गुण है उष्णता और आकार है प्रकाश, प्रकट अग्नि से ही सबका काम बनता है किन्तु **निनि० व्यापक अग्नि अव्यवहार्य है।** अग्नि को प्रकट करने के लिये प्रयत्न करना पड़ता है, पुरुषार्थ से अग्नि प्रकट होगी तो ठंडी दूर हो जायेगी व कच्चा भोजन पक जायेगा । निनि० अग्नि एक अद्वितीय है किन्तु ससा० अग्नि अनंत रूपों में प्रकट हो रही है, इसी **ससा० अग्नि से सारे संसार का काम बनता है।** ससा० अग्नि सब काम समाप्त होने पर पुनः निनि० स्वरूप में समा जाती है। इसी प्रकार से भगवान के भी निनि० एवं ससा० २ रूप हैं। निनि० एक अद्वितीय सच्चिदानंद ब्रह्म हैं इस निनि० से संसार का काम नहीं बनता है ससा० भगवान से ही सबका काम बनता है। जैसे हम प्रयत्न से ससा० अग्नि को प्रकट करते हैं ऐसे ही भगवान की भक्ति से भगवान ससा० रूप में प्रकट होते हैं और भक्तों के दुःख दूर करते हैं। भगवान शंकर कहते हैं कि जैसे व्यापक अग्नि प्रेमी अपने प्रेम से प्रकट कर लेते हैं ऐसे ही यदि प्रेम से पुकारा जाये तो भगवान भी प्रकट हो सकते हैं क्योंकि भगवान सर्वत्र व्यापक हैं **
3	03 Jun	38				**भगवान से सृष्टि के आदि में ओंकार का प्रादुर्भाव हुआ।** भगवान की जब इच्छा हुई तो ओंकार पहले मन में आया फिर कंठ में आया और फिर बाहर बिखर गया। उत्पत्ति से पहले वह परमब्रह्म रूप ही था इसलिये ओंकार को परावाणी कहते हैं। **परा** ओंकार का परमब्रह्म रूप है जो ब्रह्म में समाया हुआ है, **पश्यन्ति** हुआ जब मन में आया, **मध्यमा** हुआ जब कंठ में आया फिर कंठ से मुख में आया और मुख से बाहर प्रकट हुआ तब इसका नाम **बैखरी** पड़ गया - बैखरी अर्थात् स्वर-व्यंजन के रूप में बिखर गया। ← ओंकार का स्वर-व्यंजन में विस्तार, नाम क्रिया से वाक्य एवं व्याकरण → इस प्रकार ओंकार 'परा, पश्यन्ति, मध्यमा व बैखरी' ४ वाणियों से संसार भर के नाम-रूप बन गया यानि **'ओंइम'** ये एक अक्षर ब्रह्म सारा विश्व बन गया है। ओंकार का संक्षेप में वर्णन :- ओंकार में **अ** कार - **उ** कार - **म** कार ये ३ अक्षर हैं जिन्होंने ३ गुण क्रमशः सत्व-रज-तमु, ३ देव क्रमशः विष्णु-ब्रह्मा-महेश, ३ देह क्रमशः स्थू०-सू०-का० एवं ३ अवस्थायें क्रमशः जा०-स्व०-सु० का रूप धारण कर लिया । ओंकार भगवान का सबसे छोटा, एक अक्षर का सर्वश्रेष्ठ नाम हैं जो ब्रह्म को बताने के लिये ब्रह्म से ही प्रकट हुआ है। इसको ज्ञान नहीं है अतः ये तद्-रूप से भगवान को बताता है। ओंकार कहता है कि 'जा०-स्व०-सु०' मेरा रूप है ये मैं नहीं जानता हूँ - ये 'इदं रूप' है तथा जो 'जा०-स्व०-सु०' को जानता है वह ब्रह्म है - ये 'तद्-रूप' है, हे जीवो ! वही ब्रह्म तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है। 'जा०-स्व०-सु०' इतना मेरा स्वरूप है व जो मेरी उत्पत्ति-लय को जानता है - वह ब्रह्म है, हे जीव वही तेरा स्वरूप है क्योंकि तू जानता है इसलिये तू ब्रह्म रूप है अतः ओंकार ने इस प्रकार से भगवान को बता दिया । 'जा०-स्व०-सु०' जितना भी दृश्य जगत है ये माया / प्रकृति है ये ओंकार का स्वरूप है और जो इसे जानता है वह ब्रह्म है वही तुम्हारा स्वरूप है ।।
4	04 Jun	29				**हनुमानजी की भ० राम से विनती** - त्वद् रूपं ज्ञातुमिच्छामि .... येन मुक्तो भवाम्यहम्' ** **सीताजी द्वारा भगवान राम का निःनि० स्वरूप निरूपण** - 'रामं विद्धि परम ब्रह्म...स्वप्रकाशं अकल्मषम्' - हे हनुमान ! राम का निनि० स्वरूप **परम ब्रह्म** है, एक अद्वितीय, सभी उपाधियों से रहित, सर्वव्यापी, सभी गुणों से परे व सभी जीवों की **आत्मा** है - सच्चिदानंद घन ब्रह्म राम का निनि० स्वरूप है। सब जीवों के हृदय में सच्चिदानंद बस रहा है परन्तु जीव राम के सच्चिदानंद स्वरूप को जानता नहीं है। राम अगोचर यानि इन्द्रियों के विषय नहीं हैं, केवल आनंद मात्र, निर्मल, शान्त महासागर के समान शान्त तथा निर्विकार हैं क्योंकि राम निनि० हैं और विकार शरीरों में होते हैं। शरीर का ही जन्म होता है और फिर वर्धते विपरणमिते अपक्षीयते विनष्यति आदि विकार होते हैं। जन्म-मरण का दुःख शरीर में ही होता है, राम में जन्म-मरण व अन्य कोई दुःख नहीं है। राम सब शरीरों में है पर उन्हें छूते नहीं हैं वैसे ही जैसे आकाश घट के बाहर और भीतर रहता है पर घट को छूता नहीं है। व्यापक राम को ही देह के अन्दर जीवात्मा कहते हैं और देह के बाहर परमात्मा कहते हैं। देह अत्यन्त मलिन है और जीवात्मा अत्यन्त निर्मल है व मलिन देह में रहता है परन्तु देह की मलिनता जीवात्मा को नहीं छूती। देह की सुन्दरता आत्मा की सुन्दरता-चमक से है क्योंकि जीवात्मा के निकलने पर देह भयंकर लगने लगता है व आत्मा के रहने से ये जड़ देह भी जीवन्त और सुन्दर लगता है **
5	05 Jun	67				सर्व दुःखों और मृत्यु से छूटने के लिये भगवान का ज्ञान आवश्यक है तथा भगवान के ज्ञान के लिये भगवान की वाणी वेद हैं। वेद में **'कर्म-भक्ति-ज्ञान'** ३ काण्ड बताये हैं। कर्मकाण्ड चित्त शुद्धि, भक्तिकाण्ड मन की एकाग्रता व ज्ञानकाण्ड अज्ञान के नाश के लिये कहा है। निष्काम कर्म से चित्त शुद्ध हो जाता है, भगवान का चिन्तन करने से मन एकाग्र हो जाता है व अज्ञान का नाश होने पर ज्ञान हो जाता है। मल-विक्षेप-आवरण भगवान के दर्शन में व्यवधान हैं तथा कर्म-उपासना-ज्ञान से इनके हट जाने पर भगवान के दर्शन होने लगते हैं। जैसे बादल आने पर सूर्य का दर्शन नहीं होता व तेज़ हवा से बादलों के हटने पर सूर्य का दर्शन होने लगता है उसी प्रकार 'मल-विक्षेप-आवरण' रूपी **माया मेघ** के समान है तथा 'कर्म-भक्ति-ज्ञान' रूपी **पवन** से माया रूपी मेघ हट जाते हैं और सूर्य रूपी भगवान का दर्शन होने लगता है। कर्मकाण्ड /// इसमें माता-पिता पुत्रादि सबके धर्म बतलाये हैं। धर्म ही

			⊕	⊕		कर्म हैं। माता-पिता की सेवा करने से सभी तीर्थों का फल मिलता है और उनके आशीर्वाद से आयु, विद्या, यश और बल मिलता है - तन का बल शक्ति, मन का बल ध्यान व बुद्धि का बल ज्ञान है। प्रथम गुरु माता है, द्वितीय गुरु पिता और तीसरे गुरु अन्य हैं । माता-पिता का धर्म है - बालक का लालन-पालन, रक्षा व उत्तम शिक्षा। बालक का हृदय राग-द्वेष रहित व अत्यंत निर्मल होता है। पत्नि का धर्म है - देवता जान कर मन वचन कर्म से पति की सेवा करना, पति का धर्म है - पत्नि की रक्षा करना, शिष्य का धर्म है - गुरु की आज्ञा का पालन, विद्याध्ययन एवं सब प्रकार से सेवा करना तथा सहपाठियों के साथ मित्र भावना और एक समान व्यवहार, ऐसी विद्या कल्याणकारी होती है - दृ०:: भ०राम । परन्तु जो बिना गुरु की सेवा के विद्या ग्रहण करता है वह विद्या कल्याणकारी नहीं होती बल्कि दुःखदायी हो जाती है - दृ०:: रावण । गुरु का धर्म है - शिष्य को वेद पुराण गीता रामायण आदि शास्त्रों का सम्यक ज्ञान देकर पारंगत बनाना, राजा का धर्म है - प्रजा का पुत्रवत् पालन एवं रक्षा करना, प्रजा का धर्म है - पिता समान राजा की आज्ञा पालन करना /// इसी प्रकार वेद में **वर्णाश्रम के धर्म** बतलाये गये हैं। अर्जुन ! सत्-रज-तम् ३ गुणों के अनुसार ही मैंने ४ वर्णों का विभाग कर दिया है। मैं निष्पक्ष हूँ, इनके कर्मों के अनुसार मैं ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्णों की सृष्टि करता हूँ पर वास्तव में मैं अकर्ता हूँ। सृष्टि का अर्थ है मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष- पर्वत आदि। अब मैं चारों वर्णों के धर्म बतलाता हूँ विशेष धर्म :- **ब्राह्मण** - शम, दम, जप, ज्ञान - विज्ञान (वेदों का ज्ञान 'ज्ञान' व ब्रह्म में पूरी निष्ठा 'विज्ञान' कहलाता है), आस्तिकत्वं - ये ब्राह्मण का स्वाभाविक कर्म है **क्षत्रिय** - शूरता-वीरता, तेज, धैर्य, युद्ध नीति में निपुणता, युद्ध से पलायन न करना, मुक्त हाथ से दान देना एवं ईश्वर भाव क्षत्रिय का स्वाभाविक कर्म है **वैश्य** - कृषि, वाणिज्य, गऊ रक्षा वैश्य का स्वाभाविक कर्म है **शूद्र** - अपने तीनों बड़े भाईयों की सेवा करना शूद्र का स्वाभाविक कर्म है। चारों भाईयों को प्रेम से रहना व मुझ माता-पिता की आज्ञा पालन करना ४रों वर्णों का धर्म है। इसी प्रकार ब्रह्मचारी, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी चारों आश्रम के धर्म बताये हैं - ये कर्मयोग है। शरीर धारण करके कर्म तो करना ही पड़ेगा अतः अपने-अपने वर्णाश्रम-पद के अनुसार ही कर्म करना चाहिये।	1
6	06 Jun	44	⊕			**वेद त्रिकाण्डमय है**। अर्जुन ! श्रेयसुख की प्राप्ति के लिये वेदों में मैंने 'कर्म भक्ति और ज्ञान' ३ योग कहे हैं। जो सदा रहने वाला नित्य सुख है उसे **श्रेयसुख** कहते हैं तथा इन्द्रिय और विषय के सम्बन्ध से उत्पन्न उसी का आभास मात्र विषय सुख **प्रेयसुख** है जो थोड़ी देर के लिये प्रतीति मात्र है, ये जीवन भर बना ही रहता है। श्रेयसुख सच्चिदानंद ब्रह्म का सुख है इसे पाने के लिये ३ काण्ड वेदों में कहे हैं। भगवान के ज्ञान में प्रतिबन्ध **'मल-विक्षेप-आवरण'** के हटाने के लिये वेदों में क्रमशः **'कर्म-भक्ति-ज्ञान'** ये ३ काण्ड हैं। अनेक जन्मों के पापों का नाश करने के लिये **'निष्काम'** कर्म हैं तथा स्त्री पुत्र धन व राज्य पाने के लिये किये जाने वाले कर्म **'सकाम'** कर्म हैं। सकाम कर्म से संसार व निष्काम कर्म से भगवान मिलते हैं। भगवान की आज्ञा मान कर भगवान की प्रसन्नता के लिये किये गये कर्म निष्काम कर्म हैं उनसे मन निर्मल हो जाता है और फिर निर्मल मन भगवान की प्राप्ति का साधन बन जाता है। भगवान जगत के माता-पिता व गुरु हैं, राजाओं के राजा हैं, सारे संसार के ऊपर भगवान का शासन है। भगवान जगत के अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं **दृष्टान्त** :- मकड़ी, केश व शरीर के लोम, पृथ्वी से उत्पन्न औषधियाँ - जैसे आम अमरूद अनार गेहूँ जौ चना आदि। बाहर से सामग्री लिये बिना पृथ्वी इन्हें उत्पन्न एवं धारण करती है ऐसे ही मैं चेतन पुरुष भी हूँ, मैं **'सत्य-ज्ञान-आनंद'** से पूर्ण **पुरुष** हूँ। मुझसे ही ये जगत उत्पन्न होता है, मुझमें ही रहता है व मुझमें ही लीन हो जाता है अतः जगत का माता, पिता, धाता और पितामह भी मैं ही हूँ इसलिये सभी वर्णों के स्त्री-पुरुषों को आपस में प्रेम पूर्वक वेद की आज्ञानुसार रहना चाहिये। सभी वेद शास्त्र गीता रामायण आदि मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं। श्रुति-स्मृति मेरे नेत्र हैं, ४रों वर्णाश्रमों के स्त्री-पुरुषों को इन्हीं के अनुसार कर्म करना चाहिये। सभी के लिये भगवान ने वेद में कर्म-धर्म बताये हैं। इसलिये सभी को अपने कर्तव्य-कर्म करते हुए प्रेम से मिलजुल कर रहना चाहिये क्योंकि सभी भगवान की सन्तान हैं। भगवान कहते हैं कि जो मेरी आज्ञा का उलंघन करता है वह मुझसे द्वेष करता है, वह मेरा भक्त नहीं है, उसे मैं दण्ड देता हूँ।	
7	07 Jun	27	⊕	⊕		**वेद त्रिकाण्डमय है** - 'कर्म उपासना ज्ञान' । **निष्काम कर्म** से चित्त की शुद्धि होती है, अनेकों जन्मों के पाप-पुंज जिनसे मन मैला होता है वह मल धुल जाता है। शुद्ध मन में भक्ति होती है फिर ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान भक्ति का पुत्र है। ज्ञान उदय होकर अज्ञान असुर का नाश कर देता है व फिर सच्चिदानंद का दर्शन होता है वही हमारा आपका स्वरूप है। स्त्री पुत्र धन राज्य की प्राप्ति के लिये किये गये कर्म **सकाम कर्म** कहलाते हैं, सकाम कर्म से संसार और निष्काम कर्म से भगवान मिलते हैं। नि०क० से मन शुद्ध होता है फिर भक्ति होती है और फिर आवरण का नाश होने से अपने स्वरूप का ज्ञान होता है। अपने-अपने वर्णाश्रम एवं पद के अनुसार माता पिता पुत्र गुरु शिष्य राजा प्रजा आदि सभी के कर्तव्य कर्म वेद में कहे गये हैं जो चित्त शुद्धि के साधन हैं, ये विशेष धर्म हैं और सभी वर्णाश्रम-पद के लिये पालन करने योग्य कर्म सामान्य धर्म हैं जो इस प्रकार हैं :- १. **अहिंसा** - परम धर्म है। शारीरिक, मानसिक या वाचिक किसी भी हिंसा का निषेध है २. **सत्य** - सत्य २ प्रकार का होता है, पहला वाणिक सत्य - जो परमब्रह्म परमात्मा को जानने का साधन है, ये व्यवहारिक सत्य धारण करने पर ही पारमार्थिक सत्य प्रकट होता है व दूसरा है परम सत्य - **'सच्चिदानंद ब्रह्म'** जो हमारा-आपका स्वरूप ही है ।।	2
8	08 Jun	48	⊕	⊕		**वेद त्रिकाण्डमय है** - वेद में ३ काण्ड हैं **'कर्म उपासना ज्ञान'**। इनका प्रयोजन **'मल विक्षेप आवरण'** तीन दोषों को हटाना है। भगवान के दर्शन में ये दोष प्रतिबन्धक बन जाते हैं, ये बादलों के समान जीव और भगवान के बीच में आ गये हैं जो भगवान के दर्शन नहीं होने देते। निष्काम कर्म से मल, भक्ति से विक्षेप व ज्ञान से आवरण दोष की निवृत्ति हो जाती है और इन व्यवधानों की निवृत्ति से भगवान के दर्शन होने लगते हैं /// कर्मकाण्ड /// अपने-अपने वर्णाश्रम एवं पद के अनुसार माता पिता पुत्र गुरु शिष्य राजा प्रजा आदि सभी के कर्तव्य कर्म वेद में कहे गये हैं जो चित्त शुद्धि के साधन हैं, ये विशेष धर्म हैं और सभी वर्णाश्रम-पद के लिये पालन करने योग्य कर्म सामान्य धर्म हैं जो इस प्रकार हैं :- १. **अहिंसा** - परम धर्म है। शारीरिक, मानसिक या वाचिक किसी भी हिंसा का निषेध है २. **सत्य** - सत्य २ प्रकार का होता है, पहला है वाणिक सत्य - जो परमब्रह्म परमात्मा को जानने का साधन है, ये व्यवहारिक सत्य धारण करने पर ही पारमार्थिक सत्य प्रकट होता है - जैसा देखा-सुना-अनुभव किया वैसा का वैसा बताना व्यवहारिक सत्य है व दूसरा है परम सत्य - परमसत्य परमात्मा भगवान हैं 'सच्चिदानंद ब्रह्म' जिनकी उत्पत्ति-नाश नहीं होता व अनंत अखण्ड ज्ञान हैं जो हमारा-आपका स्वरूप ही है ३. **अस्तेय** - चोरी न करना ४. **ब्रह्मचर्य** - इससे बुद्धि में ज्ञान, मन में भक्ति व शरीर में तेज और बल बढ़ता है तथा निरोग होते हैं ५. **अपरिग्रह** - अन्न, धन, वस्त्र व भवन का अधिक संग्रह न करो ।।	3
9	09 Jun	41	⊕	⊕		/// भक्तिकाण्ड /// श्रीमद्भागवत् में **भक्ति का निरूपण** :: 'श्रवणं कीर्तनं विष्णु स्मरणं पाद सेवनं, अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्म निवेदनं' :: जो स्वयं को भगवान को समर्पण कर देता है वह सब दुःखों से मुक्त हो जाता है और भगवत् रूप ही हो जाता है जैसे बिन्दु समुद्र में मिलने सिन्धु रूप ही हो जाता है, इसका ८४ लाख योनियों में भटकना समाप्त हो जाता है - यही सच्ची भक्ति है जहाँ विभक्ति खत्म हो जाय। भगवान राम का शबरी को **नवधा भक्ति** का उपदेश :- १ संतों का संग २ मेरे भक्त संतों से मेरी कथा सुनना, भगवान के निर्गुण और सगुण स्वरूप का कथन करना ही कथा है। मेरे कृपा पात्र संत लोग मेरे दोनों स्वरूपों को जानते हैं जैसे अग्नि दो प्रकार की होती है - ससा० और निनि०, ऐसे ही भगवान के दो रूप होते हैं ।। एक दारु गत् देखिए एकू, पावक युग सम ब्रह्म विवेकू ।। **निनि०** अग्नि सभी काष्ठ कोयले में व्यापक व एक है इसमें उष्णता और प्रकाश का व्यवहार नहीं होता, संसार का कोई काम इस निनि० अग्नि से नहीं बनता और दूसरी **ससा०** प्रकट अग्नि से उष्णता और प्रकाश के रूप में संसार का सारा व्यवहार (यानि भोजनादि बनना व घर का अंधकार मिटाना) होता है ऐसे ही भगवान के भी दो रूप होते हैं **ससा०** - राम, कृष्ण आदि अवतार के रूप में प्रकट होने पर दिखाई पड़ते हैं तथा साधुओं की रक्षा व दुष्टों का दलन करते हैं। ब्रह्म का **निनि०** स्वरूप व्यापक, एक अद्वितीय, अविनाशी व सत्-चेतन-आनंदघन है। वही सब जीवों के हृदय में विराजमान है परन्तु जीव ब्रह्म को जानता नहीं है। जब गुरु कृपा से वह जान जाता है कि उसका स्वरूप भी व्यापक ब्रह्म ही है तो वह भी जन्म-मरण के दुःख से मुक्त हो जाता है ३ निरभिमान होकर गुरु के चरणों में पूर्ण भक्ति और सेवा ४ निश्छल भाव से मुझ ईश्वर का गुणगान	4
10	10 Jun	36				सूर्य के दर्शन में बादलों की भाँति ही भगवान के दर्शन में मल-विक्षेप-आवरण व्यवधान आ गये हैं इनकी निवृत्ति के लिये भगवान ने त्रिकाण्डमय वेद कहा है। निष्काम कर्म से मल, भक्ति से विक्षेप व ज्ञान से आवरण हट जाता है और भगवान के दर्शन होने लगते हैं। कर्म-उपासना-ज्ञान में कक्षा/सोपान क्रम है। जा०-स्व०-सु० तीन कक्षाओं को पार करके ४थी कक्षा तुरीय है-ये साक्षात् भगवान ही हैं। कर्मकाण्ड पहली कक्षा है इसके अन्तर्गत् सामान्य एवं विशेष धर्म का निरूपण है तथा निष्काम भाव से इनका पालन ही कर्मयोग है। सामान्य धर्म Contd.. ६. अक्रोध ७. गुरु-सुश्रुषा ८. शौचं - तन मन की शुद्धि ९. सन्तोषं - अपनी नीति-न्याय	

						की कमाई में संतोष १०. आर्जवम् - सरलता ११. अमानित्वं - निरभिमानी होकर दूसरों का सम्मान करना १२. अदम्भित्वं १३. आस्तिकत्वं - ईश्वर, वेद व गुरु में पूर्ण विष्वास करना भक्तिकाण्ड - **नवधा भक्ति** १ संतों का संग २ भगवत् कथा सुनना ३ गुरु पद सेवा ४ परम दयालु एवं सर्वशक्तिमान भगवान के गुणगान ५ मन में स्वरूप व अर्थ की भावना सहित मंत्र जाप तथा मुझमें दृढ़ विश्वास - भगवान का नाम/मंत्र गुरु से ही लेना चाहिये क्योंकि गुरु अर्थ बताते हैं क्योंकि अर्थ एवं भावना के साथ मंत्र जाप करने से ही लाभ होता है इसलिये अर्थ की ही विशेषता है, साथ ही भगवान में पूरा विश्वास रखें क्योंकि विश्वास ही फल देता है ६ इन्द्रियों व मन को विषयों से हटावें और संसार के भोग विलास से वैराग्यवान होवें व भगवान को पाने के लिये निष्काम कर्म करें एवं निरन्तर सज्जनों का धर्म पालन करे अर्थात् संसार से वैराग्यवान होकर भगवान में अनुराग करें ७ चराचर जगत को मेरा ही रूप देखो (ये मनुष्य, पशु-पक्षी, सूर्य-चन्द्र आदि अनेक नाम-रूप भगवान का विश्व-विराट रूप है) और संतों को मुझसे अधिक जानो क्योंकि संत साधन हैं और मैं साध्य हूँ, संतों के बताने पर ही भगवान की प्राप्ति सम्भव है, साधन से ही साध्य प्राप्ति होती है ।।	5
11	11 Jun	45				निष्काम कर्म से मन शुद्ध होता है व शुद्ध मन में ही भक्ति होती है, भक्ति से एकाग्र मन में ही भगवान का ज्ञान होता है। ज्ञान और वैराग्य भक्ति के पुत्र हैं। जो काम भक्ति नहीं कर पाती वह ज्ञान और वैराग्य कर दिखाते हैं वे मृत्यु को मार भगाते हैं। भक्तिकाण्ड **नवधा भक्ति** - - ७ चराचर जगत को मेरा ही रूप देखो (ये मनुष्य, पशु-पक्षी, सूर्य-चन्द्र आदि अनेक नाम-रूप भगवान का विश्व-विराट रूप है) जैसे जल एक है और तरंगें अनेक हैं परन्तु सभी तरंगों में जल ही जल है, जल अविनाशी है और तरंगें नाशवान हैं, तरंगें जल से अलग नहीं हैं - तरंग जल से उत्पन्न होती है, जल में रहती है और जल में ही लय हो जाती है। सभी तरंगों में जल को देखना ही यथार्थ ज्ञान है। इस तरंग नाम को हम बोलते है छूते है पर पकड़ने पर केवल जल ही हाथ आता है इससे जाना जाता है कि तरंग के रूप में जल ही है ऐसे ही मनुष्य, पशु-पक्षी, सूर्य-चन्द्र आदि सब तरंगें हैं अतः उन सब में जल-रूप भगवान के ही दर्शन करना चाहिये, तरंग-रूप जगत नाशवान है व जल-रूप व्यापक भगवान अविनाशी हैं और संतों को मुझसे अधिक जानो क्योंकि संत ही मेरा निनि० और ससा० स्वरूप बताते हैं यानि संत साधन हैं और मैं साध्य हूँ, साधन से ही साध्य की प्राप्ति सम्भव है। राम समुद्र हैं तो संत-महात्मा मेघ हैं अतः बढ़ाई सिन्धु की नहीं अपितु मेघों की है। समुद्र अचल है व इसका जल खारा है, वही जल अपने बड़े भाईयों 'अग्नि और वायु' का संग करके जब जलद-बादल-मेघ बन जाता है तो वह सबको जीवन दान देने वाला हो जाता है, ये मेघ संसार भर में जा-जाकर पानी पिलाते हैं। इसी प्रकार वेदों में भगवान का स्वरूप बताया गया है परन्तु गुरु के बिना वह नमकीन/कड़वा लगता है और गुरु के मुख से जब वही वेद मंत्र निकलते हैं तो वे अमृत से भी अधिक लगते हैं। गुरु जीव को उसका अमृत स्वरूप बताते हैं क्योंकि जीव अमृत-रूप भगवान का पुत्र है। जीव चेतन और अविनाशी है तथा जड़ जगत विनाशी है ८ अपनी नीति-न्याय-मर्यादा की कमाई में संतोष करना चाहिये, चोरी बदमाशी करने से ज्यादा नहीं मिल सकता क्योंकि भाग्य में विधाता ने जितना लिख दिया है उतना धन मरुस्थल में भी मिल जायेगा ९ दूसरे का कभी दोष नहीं देखना चाहिये क्योंकि ये संसार गुण-दोष से ही बना है। दोष देखना पाप है। दूसरों के गुण देखने से राग व दोष देखने से द्वेष होगा, राग-द्वेष स्वयं ही पाप हैं। केवल अपने ही गुण-दोष देखने चाहिये १० सबसे छल-कपट त्याग करके मिलो एवं मेरा पूरा भरोसा रखो, सुख में हर्षित और दुःख में दुःखी मत होओ क्योंकि प्रारब्ध के अनुसार सुख-दुःख आते-जाते रहते हैं तथा ये सदा नहीं रहते अतः धैर्य रखना चाहिये - इस भक्ति को हमें धारण करना चाहिये ।।	6
12	12 Jun	35				**भगवान के ससा० और निनि०** स्वरूप निरूपण हेतु हनुमानजी का भगवान राम से निवेदन - 'त्वद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः राम मुक्तये, अनायासेन येनाहं मुच्येयं भव बन्धनात्, कृपया वद्मे राम येन मुक्तो भवाम्यहम्' // **सीताजी द्वारा भगवान राम का नि०नि० स्वरूप निरूपण** // **अ०रा०/प्रथम सर्ग/राम हृदय** - 'रामं विद्धि परम ब्रह्म...स्वप्रकाशं अकल्मिषम्' - हे हनुमान ! राम का निनि० स्वरूप परम ब्रह्म है, जो प्रकृति से परे है उसको पुरुष और ब्रह्म कहते हैं, वही प्रकृति की सीमा हैं। राम सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण पुरुष हैं व सबसे बड़े हैं इसलिये राम को ब्रह्म कहते हैं। राम सत्-चित्-आनंद स्वरूप हैं राम का जन्म नहीं होता, राम सदा रहते हैं इसलिये वे **सत्** हैं वे भूत-वर्तमान-भविष्य सब काल में हैं व आदि-अन्त रहित हैं। राम अनंत-अखण्ड ज्ञान-प्रकाश हैं जो सदा एक समान प्रकाशमान रहते हैं। सूर्य, चन्द्र, तारागण, विद्युत व अग्नि - संसार के इन ५चों प्रकाशों से भी राम का प्रकाश ऊपर है जिसका उदय-अस्त कभी नहीं होता। इन पाँचों प्रकाशों को ज्ञान नहीं है, राम इन सब प्रकाशों को देखते और जानते हैं परन्तु ये प्रकाश राम को नहीं जानते। राम सब प्रकाशों के प्रकाशक हैं इसलिये राम को **चित्** कहते हैं। राम आनंद के सिन्धु हैं, निनि० आनंद देखने में नहीं आता है। राम का आनंद भी आदि-अन्त रहित **आनंद** का सिन्धु है। संसार में इन्द्रिय और विषय के सम्बन्ध से जो सुख मिलता है वह प्रतीति मात्र क्षणिक **प्रेयसुख** है व राम का आनंद नित्य **श्रेयसुख** है। निनि० राम एक अद्वितीय हैं, श्रुति कहती है कि ब्रह्म एक अद्वितीय है उसमें नानात्व नहीं है। राम सम्पूर्ण उपाधियों से विनिर्मुक्त हैं। उपाधि क्या है? नाम और रूप को उपाधि कहते हैं व राम उपहित हैं। संसार भर में नाम और रूप दो वस्तु ही हैं इन सब नाम-रूपों के भीतर भी राम हैं और बाहर भी राम हैं। नाम से ही रूप का ज्ञान होता है। क्या निर्गुण - क्या सगुण, दोनों के बताने के लिये नाम ही गवाही है, सभी नाम-रूप उपाधि हैं। सब शरीरों के भीतर बैठकर राम ही देख रहे हैं क्योंकि शरीरों को ज्ञान नहीं है। शरीरों के भीतर राम को ही आत्मा और बाहर परमात्मा कहते हैं परन्तु राम अखण्ड हैं। राम चेतन रूपी आकाश हैं। राम का स्वरूप अणु से अणु है जो इस भूताकाश में भी प्रविष्ट है तथा इतना वृहद् है कि आकाश से भी अनंत गुना बड़ा है ।।	
13	13 Jun	39		भगवान राम से लक्ष्मण के ७ प्रश्न		**लक्ष्मणजी के भगवान राम से सविनय ७ प्रश्न** :- हे प्रभु ! माया, ईश्वर, जीव, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति क्या है ? इस पर भगवान राम ने कहा कि हे लक्ष्मण ! तुम मति, बुद्धि, चित्त लगाकर सुनो मैं संक्षेप में कहता हूँ **माया** - ये शरीर मैं हूँ और शरीर के सम्बन्धी मेरे हैं यानि शरीर में अहं-भाव (अहंता) और सम्बन्धियों में मम-भाव (ममता) को माया कहते हैं अर्थात् मैं-मेरा और तू-तेरा बस इतनी ही माया है। ये सब शरीर माया से बनते हैं इसलिये ये सब झूठे हैं। इस माया ने सब जीवों को अपने वश में कर रखा है। **माया का भेद** - माया ३ गुण वाली है, जो शुद्ध सत्वगुण की प्रधानता से विद्या व मलिन सत्वगुण की प्रधानता से अविद्या कहलाती है। अविद्या माया के वश में होकर जीव भवकूप (जन्म-मरण) में पड़ जाता है व ८४ लाख योनियों में जीव को भटकना पड़ता है। दूसरी विद्या माया ईश्वर की प्रेरणा से जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार का काम करती है, स्वयं में उसमें बल नहीं है ईश्वर की सत्ता स्फूर्ति प्रेरणा से माया जगत का रूप धर लेती है इसलिये ईश्वर की सृष्टि या जीव की अहंता-ममता सृष्टि माया की ही रचना है अतः इन्द्रियों से जानने वाला जगत माया है **ज्ञान** - चराचर जगत में एक ब्रह्म को ही देखना ज्ञान है। ब्रह्म भी आकाश की भाँति कण-कण में समाया हुआ है। अनेक तरंगों में एक जल को देखना ही यर्थाथ ज्ञान है। जल से तरंग उत्पन्न होती है, जल में रहती और चलती-फिरती है फिर जल में ही समा जाती है अतः तरंगें नाम-रूप भ्रम मात्र हैं जल ही सत्य है क्योंकि तरंग पकड़ने पर जल ही हाथ आता है। ये जगत भी नाम-रूप तरंग के समान है और सच्चिदानंद ब्रह्म जल के समान इसलिये सबमें राम का दर्शन करना ही ज्ञान है तरंगों में जल के समान । मिथ्या आभूषणों में सत्य सुवर्ण को देखना ही ज्ञान है **वैराग्य** - सिद्धियों को तृण के समान जानना ही परम वैराग्य है। सत्-रज-तम् तीन गुणों से बने संसार को त्याग देना ही वैराग्य है। वैरागी सिद्धियों की उपेक्षा करता है **जीव** - जो ईश्वर को, माया को व स्वयं अपने आपको नहीं जानता उसको जीव कहते हैं **ईश्वर** - बन्ध और मुक्ति को देने वाला, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, माया का प्रेरक व सबसे महान को ईश्वर कहते हैं **भक्ति और भक्त** - १ ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम व वेदानुसार अपना कर्तव्य-कर्म पालन २ पुलकित शरीर, गद्गद् वाणी व अश्रुवत् नेत्रों से मेरा गुणगान ३ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य जिसके हृदय में नहीं हैं ऐसे निष्कपट भाव वाले भक्त के मैं वश में रहता हूँ ४ जननी, जनक, बन्धु, सुत, दारा, तन, धन, भवन, सुहृद और परिवार की ममता त्याग कर व इन दस धागों की एक डोरी से अपने मन को मेरे चरणों में बाँध देता है, मेरे सिवाय जिसकी अब कोई इच्छा नहीं है, जो सम-दृष्टि हो गया है, जिसका अपने-पराये का भाव हट गया है उसे हर्ष शोक भय कुछ नहीं है - ऐसा भक्त मुझे अत्यधिक प्यारा है, वह मेरे हृदय में ऐसे बसता है जैसे लोभी के हृदय में धन । इस भक्त का योग-क्षेम मैं वहन करता हूँ ।।	
14	14 Jun	31				**भगवान के ससा० और निनि०** स्वरूप निरूपण हेतु हनुमानजी का भगवान राम से निवेदन - 'त्वद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः राम मुक्तये, अनायासेन येनाहं मुच्येयं भव बन्धनात्, कृपया वद्मे राम येन मुक्तो भवाम्यहम्' // **सीताजी द्वारा भगवान राम का नि०नि० स्वरूप निरूपण** // **अ०रा०/प्रथम सर्ग/राम हृदय** - 'रामं विद्धि परम ब्रह्म...स्वप्रकाशं अकल्मिषम्' - हे हनुमान ! राम का निनि० स्वरूप सच्चिदानंदघन ब्रह्म है। राम प्रकृति से परे हैं इसलिये इन्हें **परम**, सबसे बड़े हैं इसलिये इन्हें **ब्रह्म**, इनका जन्म नहीं होता इसलिये इन्हें **सत्**, अनंत-अखण्ड ज्ञान-प्रकाश हैं जो सदा एक समान प्रकाशमान रहता हैं इसलिये इन्हें **चित्** तथा अनंत-अखण्ड	

						आनंद के सिन्धु हैं इसलिये **आनंद** कहते हैं। राम सभी नाम-रूप उपाधियों से विनिर्मुक्त हैं। नाम-रूप को ही संसार कहते हैं। नाम से ही रूप का ज्ञान होता है। भगवान के निनि० और ससा० दोनों रूपों को बताने वाला नाम ही है। नाम के बिना रूप का ज्ञान नहीं होता **(हीरे और कुँजड़े की कथा)** इन सब नाम-रूपों के भीतर बैठकर निनि०-राम ही देख रहे हैं और वही जीव का भी स्वरूप है ।।	
15	15 Jun	43				ज्ञानकाण्ड **सामवेद-छा०उ०-६ठा अ०** :: आरुणी ऋषि का पुत्र श्वेतकेतु से प्रश्न - हे पुत्र ! क्या तुमने वह विद्या पढ़ी है जिस एक को जानने से जो कुछ सुना नहीं वह सुना हुआ हो जाता है, जो कभी देखा नहीं वह देखा हुआ हो जाता है व जो कभी जाना नहीं वह जाना हुआ हो जाता है यानि केवल एक को जानने से सब कुछ जान लिया जाता है ? **श्वेतकेतु के मना करने पर आरुणी का पुत्र को उपदेश :-** हे पुत्र ! सावधान मन से श्रवण करो - एक माटी के पिण्ड को जान लेने से माटी से बने संसार की जितनी भी वस्तुऐं हैं वह सब जान ली जाती हैं क्योंकि घट-मठ के कण-कण में माटी ही समायी है। नाम और रूप केवल वाणी का विकार है कथन मात्र है। सत्य वस्तु उनमें एक माटी है माटी का नाश नहीं होता। घट-मठ माटी से बनते हैं, माटी में रहते हैं फिर माटी में विलीन हो जाते हैं पर माटी सदा रहती है, माटी ही सत्य है अतः एक माटी के जान लेने से संसार भर के घट-मठ जान लिये जाते हैं क्योंकि सबमें एक माटी ही समायी है, नाम-रूप सदा नहीं रहते इसी प्रकार एक ब्रह्म को जान लेने पर सारा संसार जान लिया जाता है क्योंकि स्त्री-पुरुष, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र आदि सब नाम-रूप कल्पना मात्र है, ब्रह्म ही सत्य है। हे श्वेतकेतु ! जैसे एक सुवर्ण के ज्ञान से सुवर्ण से बने सभी आभूषण जान लिये जाते हैं अर्थात् कारण के ज्ञान से कार्य का ज्ञान हो जाता है। किसी भी कार्य के **'निमित्त और उपादान'** दो कारण होते हैं, उपादान कारण का अपने कार्य में प्रवेश या व्यापकता होती है और निमित्त कारण तो कार्य करके अलग हो जाता है। निमित्त कारण में **'ज्ञान-इच्छा-प्रयत्न'** तीनों होने आवश्यक है अतः आभूषण बनाने में स्वर्णकार रूपी निमित्त अनिवार्य है। निमित्त-कारण का आभूषण में प्रवेश नहीं होता पर उपादान-कारण स्वर्ण आभूषण में समाया रहता है इसलिये स्वर्ण से आभूषण भिन्न नहीं होते। इसी प्रकार भगवान जगत का कारण हैं। भगवान सत्य हैं और ये नाम-रूप संसार कल्पित है। हे पुत्र ! सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद ब्रह्म भगवान ही थे फिर उनसे अग्नि तत्त्व उत्पन्न हुआ, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी और फिर ये सारा जगत उत्पन्न हो गया। सत्य की ही जीत होती है। भगवान सत्य है वही सदा रहेगा, सत्य भगवान से उत्पन्न ये जगत सदा नहीं रहेगा। भगवान आदि में हैं, मध्य में हैं और अन्त में हैं, वे ज्यों के त्यों सदा रहेंगे। सभी नाम-रूप भगवान से उत्पन्न होते हैं व नष्ट होने पर सच्चिदानंद भगवान ही शेष रहेंगे क्योंकि कल्पित की निवृत्ति सत्य में ही होती है जैसे घट-मठ के नष्ट होने पर माटी ही शेष रहेगी। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सब कल्पित हैं ब्रह्म ही सत्य है। ये नाम-रूप जगत मिथ्या है। इन शरीरों में जो जीवात्मा है वह साक्षात् ब्रह्म का ही रूप हैं। जीवात्मा का जन्म-मरण नहीं होता। जीवात्मा स्त्री-पुरुष-नपुंषक नहीं है पर सब शरीरों में है। शरीर भगवान की माया से बन जाते हैं। जिससे ये जगत उत्पन्न होता है, जिसमें रहता हैं व जिसमें लीन हो जाता है वह ब्रह्म है ।।	7
16	16 Jun	4:53					
17	17 Jun	00				प्रवचन अनुपलब्ध	NA
18	18 Jun	28				**सामवेद :: छा०उ० :: ७तवीं अ०** नारद-सनतकुमार सम्वाद - नारदजी द्वारा अपनी विद्याओं का वर्णन :- १ चारों वेद जिनमें एक लाख श्लोक हैं तथा व्यासजी द्वारो चारों वेद का ही विस्तार एक लाख श्लोक वाली - २ इहिास-महाभारत एवं ३ अट्ठारह पुराण ४ व्याकरण (वेद के छः अंग हैं - शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छंद ज्योतिष, इनमें व्याकरण वेदों का मुखरूप है) ५ पितृं ६ राशिं-गणित ७ देवं-उत्पात् ज्ञान ८ निधिं-भूगर्भ ज्ञान ९ वाकोवाक्यं-तर्कशास्त्र १० एकायनं-नीतिशास्त्र ११ ब्रह्मविद्या १२ देवविद्या-यज्ञादि १३ भूतविद्या १४ क्षत्रविद्या-धनुर्विद्या १५ नक्षत्रविद्या-ज्योतिष १६ सर्पविद्या-गारुड़ी १७ देवजन विद्या-संगीत इति । हे भगवन ! मैं केवल मंत्रों का ही ज्ञाता हूँ, मैं आत्मा को नहीं जानता। मैंने तत्त्व दर्शियों से सुना है कि जो अपनी आत्मा को जान जाता है वह शोक-सागर से तर जाता है अतः आप आत्म/ब्रह्मज्ञान देकर मुझे शोक-सागर से पार करें। सनतकुमारजी द्वारा नारद को ब्रह्म ज्ञान :- हे नारद ! जो **भूमा** तत्त्व है वही सुखरूप है, अल्प में सुख नहीं है। भूमा नाम महान का है। दुःख निवृत्ति और नित्य शान्ति प्राप्त करने के लिये भूमा को ही जानना चाहिये। इ०म०बु०वाणी जहाँ नहीं पहुँच सकते अर्थात् जो इ०म०बु० से नहीं जाना जा सकता पर जो इ०म०बु० को जानता है वह भूमा तत्त्व है और जहाँ इ०म०बु० पहुँचते हैं यानि जो इ०म०बु० का विषय है वह बहुत **अल्प** है। जो अल्प है वह मरता है तथा भूमा अमृत है जो कभी नहीं मरता, वही अमृत तत्त्व तुम्हारा स्वरूप है, वही सबका आधार-अधिष्ठान है, उसी में सारा विश्व स्थित है वही हम सब जीवों का स्वरूप - परम् प्रकाश रूप **'सत्-चित्-आनंद ब्रह्म'** है। हे नारद ! जो भूमा है वही हमारा तुम्हारा आत्मा भी है। हमारा **'आत्मा ही ब्रह्म है-ब्रह्म ही आत्मा है'** स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी आदि शरीर हैं ये भगवान की माया से बनते हैं और मिट जाते हैं पर जीवात्मा इन सब शरीरों के भीतर रहता है और सबकी आँखों से देख रहा है, इसलिये हम देखने वाले जीवात्मा हैं शरीर नहीं हैं। शरीर तो दिखाई पड़ता है, उत्पत्ति-नाशवान है और जड़ है व हमारा तुम्हारा स्वरूप ज्ञान है। सनतकुमारजी ने नारदजी को यही ज्ञान दिया है कि हम जीवात्मा हैं और जीवात्मा परमात्मा का ही स्वरूप है। शरीर सब भगवान की माया से बनते-बिगड़ते रहते हैं - यही ज्ञान हमको-आपको भी धारण करना चाहिये - **'सच्चिदानन्दं ब्रह्म'** और **'तत्त्वमसि'**	
19	19 Jun	39				**तैत्रीय उ० :: सृष्टि क्रम ::** सृष्टि के आदि में एक मात्र परमब्रह्म सच्चिदानंद परमात्मा ही थे और कोई नहीं था। उस परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ - जो सबको अवकाश देता है उसे आकाश कहते हैं। आकाश से वायु→अग्नि →जल→पृथ्वी→औषधियाँ (आम, अमरूद, आँवला, पीपल आदि)→अन्न (गेहूँ, जौ, चना आदि)→शुक्र/वीर्य उत्पन्न हुआ ।। शुक्र अन्न की ७तवीं धातु है, अन्न →रस→रक्त→माँस→मेदा→अस्थि→मज्जा→शुक्र (शुक्र=तेज, वीर्य=बल, बीज=प्रजनन शक्ति) ।। गर्भोपनिषद सविस्तार ।। संत लोग गाँव-गाँव नगर-नगर जाकर सबको गर्भ में भगवान से किये गये भक्ति के अपने करार की याद दिलाते हैं क्योंकि भक्ति से तुम भगवत् रूप व भव-रोग से मुक्त हो जाओगे। सारी सृष्टि अन्न के बुलबुले हैं व सबके भीतर जीवात्मा रहता है। सभी शरीर अन्न से बने हैं तथा हम आप ईश्वर के अंश जीवात्मा सब शरीरों के भीतर रहते हैं। जीवात्मा का जन्म-मरण नहीं होता और ईश्वर अंश होने से जीवात्मा भी चेतन, अमल, अविनाशी और स्वभाव से ही सुखराशि है। देह अत्यन्त मलिन है ये ही जन्मते मरते हैं और जीव अत्यन्त निर्मल है ये शरीर को छूता नहीं है। सब शरीरों में जो हमारा तुम्हारा जीवात्मा है उसका जन्म-मरण नहीं होता। हमारा स्वरूप सच्चिदानंद हैं, शरीरों के भीतर जीवात्मा अजर-अमर अविनाशी है व ये परमात्मा का अंश होने से परमात्मा का ही स्वरूप है। ये शरीर नष्ट होकर पृथ्वी में ही विलीन हो जाते हैं ।।	
20	20 Jun	34				**ब्रह्मोपनिषद ::** सृष्टि के आदि में एक परमब्रह्म परमात्मा ही था दूसरा कोई नहीं था। उस ब्रह्म से सर्वप्रथम **अव्यक्त** का प्रादुर्भाव हुआ। अव्यक्त नाम की परमात्मा की शक्ति है वह **अनादि** है। उसे **अविद्या**, तीन गुणवाली **त्रिगुणात्मिका** व **परा** भी कहते हैं क्योंकि वह परमब्रह्म की शक्ति है। भगवान की प्रेरणा से वह अद्भुत कार्य करने वाली, क्षणमात्र में बिना सामग्री के अनंत कोटि ब्रह्माण्ड बना देती है इसलिये उसे **माया** भी कहते हैं शास्त्र कहता है कि हमारी आत्मा में जो ये विश्व हमें दिखाई पड़ रहा है ये दर्पण में दीखने वाले नगर की भाँति है। हमारी तुम्हारी आत्मा रूपी दर्पण में ये दिखाई पड़ने वाला विश्व छाया मात्र है। हमें ये संसार बाहर प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में ये TV के ठोस शीशे में दिखाई पड़ने वाले छाया चित्रों के समान हमारी आत्मा के अन्दर दिखाई पड़ रहा है। हमारा आत्मा दर्पण है व सारा विश्व छाया-माया है। जा०-स्व०-सु० प्रतिदिन हमारी तुम्हारी आत्मा में आते जाते हैं। जा०-स्व० में जा०-स्व० का जगत आता जाता है व सुषुप्ति में दोनों विलीन हो जाते हैं - सब हमारी आत्मा में ही भासते हैं। जैसे रज्जु के अज्ञान से रज्जु में सर्प भासता है वैसे ही आत्मा के अज्ञान से आत्मा में जगत यानि आत्मा ही जगत के रूप में भासता है पर वास्तव में जगत है नहीं, ये माया है। भगवान अपनी माया से विश्व-विराट रूप धारण कर लेते हैं। भगवान सच्चिदानंदघन हैं, दर्पण की तरह ठोस हैं उनमें विश्वरूप वैसे ही दिखाई पड़ता है जैसे हमारी तुम्हारी आत्मा में ये संसार दिखाई पड़ता है। हमारा आत्मा ठोस है, सत्घन-चित्घन-आनंदघन है, इस आत्मा-परमात्मा रूपी दर्पण में सारा विश्व वैसे ही दिखाई पड़ता है जैसे TV के शीशे में महाभारत, रामलीला व रासलीला दिखाई पड़ती है । TV के शीशे में जो विश्व दिखाई पड़ता है उसे हम ही देखते हैं, TV का शीशा स्वयं तो उसे देख नहीं सकता परन्तु **हमारी आत्मा तो दर्पण भी है और द्रष्टा भी** क्योंकि आत्मा रूपी दर्पण में दिखाई देने वाले विश्व को हम ही देखते हैं। TV के शीशा जड़ है व हम चेतन हैं। इस प्रकार से ये अव्यक्त नाम की जो माया है ये अद्भुत काम करती है	

21	21 Jun	33				**वेद कहता है कि** सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद ब्रह्म ही थे दूसरा कोई नहीं था फिर उस परमात्मा में रज्जु में सर्प की भाँति अथवा पुरुष में छाया की भाँति ब्रह्म में माया प्रकट हो गयी। माया के अनेक नाम है जैसे अव्यक्त, अनादि, अविद्या, त्रिगुणात्मिका, परा तथा क्षण मात्र में बिना सामग्री के अनंत कोटि ब्रह्माण्डनात्मक जगत की रचना कर देती है, असम्भव को सम्भव करके दिखा देती है इसलिये इसे **माया** कहते हैं। बिना सामग्री से बना ये जगत झूठा है - इन्द्रजानवत् दृ०-राजा के दरबार में इन्द्र के जादूगर मित्र की कथा कहने का अभिप्राय ये कि भगवान अपनी माया के द्वारा असम्भव को सम्भव कर दिखा देते हैं। ईश्वर की माया से ये जगत क्षण मात्र में बन जाता है, वे नट के भी नट हैं, नट के खेल की भाँति ये जगत झूठा है - नटवत्। एक ईश्वर ही सत्य है, ईश्वर का अंश जीव भी सत्य है। ईश्वर का अंश होने से जीव भी अविनाशी, चेतन, अमल व सहज सुखराशि है। जीवात्मा का जन्म नहीं होता तो मरण किस प्रकार होगा। हमारे जितने भी शरीर हैं वे भगवान ने माया से बनाये हैं। माया का कार्य होने से ये **जगत मिथ्या है, ब्रह्म सत्य है, जीव तो ब्रह्म ही है** ।।
22	22 Jun	38				गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता है इसलिये गुरु की महिमा सबसे अधिक है। लौकिक अथवा पारलौकिक या पारमार्थिक हमने जो भी ज्ञान प्राप्त किया है वह गुरु से ही सीखा है। **वेद कहता है कि** सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद ब्रह्म ही थे दूसरा कोई नहीं था फिर उस परमात्मा में रज्जु में सर्प की भाँति अथवा पुरुष में छाया की भाँति ब्रह्म में माया प्रकट हो गयी। माया के अनेक नाम है जैसे अव्यक्त, अनादि, अविद्या, त्रिगुणात्मिका, परा तथा क्षण मात्र में बिना सामग्री के अनंत कोटि ब्रह्माण्डनात्मक जगत की रचना कर देती है, असम्भव को सम्भव करके दिखा देती है इसलिये इसे **माया** कहते हैं। बिना सामग्री से बना ये जगत झूठा है - इन्द्रजालवत् रावण की माया का दृष्टान्त // **योगिनी एवं ज्ञानी रानी चुड़ाला का कुम्भज ऋषि के रूप में पति राजा ऋतुध्वज को उपदेश :-** राजन पहले सर्व का त्याग करो इस पर राजा ने अपनी झोंपड़ी, कुशासन व कमण्डलु को जला दिया तो रानी ने कहा कि ये सब तो ईश्वर ने बनाया था तुम केवल अपनी वस्तु का त्याग करो इसपर राजा अपने शरीर को जलाने के लिये चल पड़ा। रानी ने राजा को रोका और कहा कि ये शरीर तो ईश्वर ने बनाया है ईश्वर की बनाई हुई चीज़ पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है, तुम्हें केवल अपनी ही वस्तु का त्याग करना अभीष्ट है अतः **'मेरेपने का अहंकार कि ये शरीर मेरा है' - इस झूठे अहंकार का तुम त्याग करो** । अब राजा शान्त हो गया और ऋषि के चरणों में गिर कर प्रणाम किया तब कुम्भज ऋषि रानी के रूप में प्रकट हो गये और कहा तुम्हारे मन में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये मैंने कुम्भज ऋषि का वेश धारण किया था। जब देह में अभिमान चला गया तो देह में रहने व देह को देखने वाला आत्मा ही शेष रहता है। **ये आत्मा ही हमारा तुम्हारा स्वरूप है।** सब शरीरों के भीतर जो रहता है व देखता है वही हमारा तुम्हारा और सबका स्वरूप है, स्त्री-पुरुष आदि हमारा तुम्हारा स्वरूप नहीं है इन्हें ईश्वर ने अपनी माया से बनाया है इसलिये चलो अपने महलों में रहो यहाँ व्यर्थ ही शरीर को सुखाने का कोई प्रयोजन नहीं है। ज्ञानी चाहे महलों में रहे या वन में रहे सब एक समान ही है कोई अंतर नहीं पड़ता है क्योंकि इधर-उधर रहना तो देह का काम है, आत्मा तो सब शरीरों में द्रष्टा-साक्षी मात्र है - *'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च'* - वह हमारा तुम्हारा स्वरूप आत्मा है, ये देह तो भगवान की माया से क्षण मात्र में बन जाते हैं। सब शरीरों के भीतर बैठकर स्वयं भगवान ही देख रहे हैं। *'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या'* क्योंकि ये जगत भगवान ने अपनी माया से क्षण मात्र में बिना सामग्री के बनाया है पर इन सबके भीतर जो जीवात्मा बैठा है वह हमारा तुम्हारा स्वरूप है। स्त्री-पुरुष तो शरीरों के नाम हैं जीवात्मा के नहीं, जीवात्मा तो सब शरीरों के भीतर द्रष्टा-साक्षी मात्र है, वो हमारा स्वरूप है। जीव का जन्म-मरण नहीं होता वह तो नित्य मुक्त है - *'एको देवा सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा'* - हमारा स्वरूप सच्चिदानंदघन भगवान ही है इसलिये - *'अयं आत्मा ब्रह्म, सो अयं आत्मा'* - अतः **ब्रह्म और आत्मा एक है यही यथार्थ ज्ञान है** //
23	23 Jun	34				**भगवान के ससा० और निनि०** स्वरूप निरूपण हेतु हनुमानजी का भगवान राम से निवेदन - 'त्वद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः राम मुक्तये, अनायासेन येनाहं मुच्चेयं भव बन्धनात्, कृपया वद्मे राम येन मुक्तो भवाम्यहम्' // **सीताजी द्वारा भगवान राम का नि०नि० स्वरूप निरूपण** // **अ०रा०/प्रथम सर्ग/राम हृदय** - 'रामं विद्धि परम ब्रह्म...स्वप्रकाशं अकल्मिषम्' - हे हनुमान ! राम का निनि० स्वरूप **सच्चि०**परमब्रह्म है। राम प्रकृति से से परे है इसलिये **परम**, सबसे बड़े हैं इसलिये **ब्रह्म** व सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण हैं इसलिये **पुरुष** कहते हैं। ब्रह्म ही प्रकृति की सीमा एवं परम गति हैं क्योंकि प्रकृति की उत्पत्ति और प्रलय राम में ही होती है। माया को ही प्रकृति कहते हैं। राम आदि-अन्त रहित हैं अतः **सत्** हैं, अनंत-अखण्ड-ज्ञान स्वरूप हैं अतः **चिद्** हैं तथा आदि-अन्त रहित **आनंद** के सिन्धु हैं। संसार में सच्चिदानंद राम एक अद्वितीय एवं सब उपाधियों से रहित हैं। सारा संसार नाम-रूप वाला ही है। नाम के बिना किसी देश-काल-वस्तु का ज्ञान नहीं होता। नाम-रूप में नाम ही प्रधान है, राम उपहित हैं और नाम-रूप उपाधि हैं। राम उपाधि के भीतर भी हैं और बाहर भी हैं। राम का निनि० स्वरूप शरीर रूपी घट के भीतर **'जीवात्मा'** और शरीर के बाहर राम ही **'परमात्मा'** कहलाता है परन्तु निनि० राम आकाश से भी सूक्ष्म एवं अखण्ड हैं, उपाधि भेद से राम के ही दो नाम हो गये हैं राम अगोचर, आनंद स्वरूप, निर्मल, शान्त महासागर के समान शान्त एवं निर्विकार यानि षट्विकार रहित है। हर शरीर में रहने वाले जीवात्मा का जन्म नहीं होता तो मृत्यु कैसे होगी क्योंकि मृत्यु का कारण जन्म ही होता है।
24	24 Jun	33				**सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद परमात्मा ही थे।** रज्जु में जैसे रज्जु के न जानने से झूठा सर्प उत्पन्न हो जाता है, पुरुष से जैसे छाया उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही सत्-चित्-आनंद से पूर्ण पुरुष ब्रह्म से सर्वप्रथम **अव्यक्त** का प्रादुर्भाव हुआ। अव्यक्त नाम की परमात्मा की शक्ति है वह **अनादि** है। उसे **अविद्या**, तीन गुणवाली **त्रिगुणात्मिका** व **परा** भी कहते हैं क्योंकि वह परमब्रह्म की शक्ति है। भगवान की प्रेरणा से वह अद्भुत कार्य करने वाली, क्षणमात्र में बिना सामग्री के अनंत कोटि ब्रह्माण्ड बना देती है इसलिये उसे **माया** भी कहते हैं ब्रह्म→माया/अव्यक्त→महत्तत्त्व/समष्टि बुद्धि→अहंतत्त्व/समष्टि मन→पंच तन्मात्रायें (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पथ्वी)→पंचमहाभूत→ अखिल जगत उत्पन्न हो गया। ये संसार पंचभूतों का कार्य है इसलिये ये जगत पंचभूतों से भिन्न नहीं है, सर्वत्र पंचभूत ही हैं छटा कुछ भी नहीं है। जिसकी उत्पत्ति होती है उसका लय भी होता है। हमारे शरीर नष्ट होकर पंचतत्तवों में ही मिल जायेंगे→पंचतन्मात्रायें (*शब्द आकाश में, स्पर्श वायु में, रूप अग्नि में, रसना जल में व गंध पृथ्वी में*) →अहं तत्त्व→महत् तत्त्व→अव्यक्त तत्त्व→ब्रह्म में लीन हो जायेगा, वह तो सत्-चित्-आनंद रूप है - ब्रह्म की उत्पत्ति हुई नहीं है अतः **सत्** है, ज्ञान स्वरूप है अतः **चिद्** है व अनंत अखण्ड आनंद सिन्धु है इसलिये **आनंद** है। जीव भी ब्रह्म का अंश है उसकी भी उत्पत्ति नहीं होती केवल शरीरों की ही उत्पत्ति होती है। जीवात्मा का जन्म नहीं होता इसलिये मृत्यु नहीं होती। हमारा तुम्हारा स्वरूप जीवात्मा है इसलिये मृत्यु भी मार नहीं सकता। जीव ईश्वर का अंश होने से ईश्वर का ही स्वरूप - अविनाशी, अमल, चेतन, सुखराशि है। जीव तो आकाश के समान मलिन शरीर में प्रविष्ट हो गया है, वह आकाशवत् असंग है। जीवात्मा अत्यन्त निर्मल है और देह मलिन है, क्योंकि शरीर कोयले की भाँति भीतर तक मलिन है इसलिये किसकी शुद्धि करोगे? जीवात्मा शरीर को छूता ही नहीं है इसलिये निर्मल ही रहता है, वह तो केवल साक्षी चेतन है जो जा०-स्व०-सु० को देखता मात्र है अतः अपने स्वरूप को जानो कि ईश्वर का अंश होने से वह सत्-चित्-आनंद रूप है अतः **अपने स्वरूप में स्थित रहो**
25	25 Jun	28				**भगवान के ससा० और निनि०** स्वरूप निरूपण हेतु हनुमानजी का भगवान राम से निवेदन - 'त्वद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः राम मुक्तये, अनायासेन येनाहं मुच्चेयं भव बन्धनात्, कृपया वद्मे राम येन मुक्तो भवाम्यहम्' // **सीताजी द्वारा भगवान राम का नि०नि० स्वरूप निरूपण** // **अ०रा०/प्रथम सर्ग/राम हृदय** - 'रामं विद्धि परम ब्रह्म...स्वप्रकाशं अकल्मिषम्' - राम का निनि० स्वरूप परम ब्रह्म है, राम **सत्** हैं क्योंकि उनका जन्म नहीं होता वे सदा हैं, अनंत-अखण्ड-ज्ञान स्वरूप हैं अतः **चिद्** हैं तथा आदि-अन्त रहित **आनंद** के सिन्धु हैं, सभी उपाधियों से रहित, शरीर के अन्दर जीवात्मा व बाहर परिपूर्ण परमात्मा, निर्विकार, माया से परे आकाश के समान सर्वत्र सर्व देश-काल-वस्तु में व्यापक है, हमारी तुम्हारी आत्मा है यानि राम का निनि० स्वरूप हमारा तुम्हारा स्वरूप है। राम का स्वरूप उदय-अस्त रहित अखण्ड स्वयं प्रकाश रूप सूर्य चन्द्र के प्रकाशक है // **सीताजी द्वारा अपना स्वरूप निरूपण** - 'मामु विद्धि मूल प्रकृति...सृजामेद मतन्विता' - मैं राम की मूल प्रकृति हूँ, मुझे ही महामाया शक्ति कहते हैं। जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार मैं ही करती हूँ। संसार में शरीर आते हैं इन ईश्वर के और जीव के शरीर की रचना भी मैं ही करती है। जीव और ईश्वर का निनि० स्वरूप अभेद है ससा० रूप में ही भेद है, इनकी उत्पत्ति-संहार मैं ही करती हूँ यानि राम कृष्ण आदि ईश्वरावतारों के तथा स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी जीव के ससा० स्वरूप का उत्पत्ति-संहार मैं ही करती हूँ। << राम कथा संक्षेप में >> निनि० राम सबके भीतर हैं द्रष्टा-साक्षी है ये संसार सब मेरी ही रचना है ।।
26	26 Jun	42				**तैत्तीय उ० :: सृष्टि क्रम :: सृष्टि के आदि में एक मात्र परमब्रह्म सच्चिदानंद परमात्मा ही थे और कोई नहीं था** । उस परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ - जो सबको अवकाश देता है उसे आकाश कहते हैं। आकाश से

			⊕			वायु→अग्नि →जल→पृथ्वी→औषधियाँ (आम, अमरूद, आँवला, पीपल आदि)→अन्न (गेहूँ, जौ, चना आदि)→ शुक्र/वीर्य उत्पन्न हुआ ।। शुक्र अन्न की ७तवीं धातु है, अन्न →रस→रक्त→माँस→मेदा→अस्थि→मज्जा→ शुक्र (शुक्र=तेज, वीर्य=बल, बीज=प्रजनन शक्ति)। जीव अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न से जीते है फिर अन्त में ही लीन हो जाते हैं << अकाल,राजा और किसान की कथा >> वेद में लिखा है कि अन्न वहुत पैदा करना चाहिये, अन्न की निंदा नहीं करनी चाहिये व अन्न को गन्दी जगहों में नहीं फेंकना चाहिये, अन्न से अधिक मूल्यवान कुछ भी नहीं है क्योंकि अन्न के बिना प्राण नहीं रहेंगे। जीवन के लिये अन्न और जल दो ही मुख्य वस्तु हैं। 'आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी' पंचभूतों के पंचीकरण से उत्पन्न २५ तत्त्वों का स्थूल शरीर व अपंचीकृत पंचभूतों से १६ तत्त्वों के सूक्ष्म शरीर की रचना होती है .. स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर रचना सविस्तार .. अपने स्वरूप को न जानना, अपनी आत्मा को न जानना ही तीसरा **कारण शरीर** है, हम-आप **चौथे** हैं। ये तीन हमारे शरीर हैं हम शरीर नहीं हैं। ये तीनों शरीर न अपने को जानते हैं न औरों को जानते हैं पर हम इन तीनों शरीरों को जानते हैं। हमारा स्वरूप परमात्मा का ही स्वरूप है ।। पाँच प्राणों की उत्पत्ति 'आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी' सभी पंचभूतों से होती है ।।	
27	27 Jun	35	⊕			**भगवान के ससा० और निनि०** स्वरूप निरूपण हेतु हनुमानजी का भगवान राम से निवेदन - 'त्वद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः राम मुक्तये, अनायासेन येनाहं मुच्येयं भव बन्धनात्, कृपया वद्मे राम येन मुक्तो भवाम्यहम्' // **सीताजी द्वारा भगवान राम का निअनि० स्वरूप निरूपण** // **अ०रा०/प्रथम सर्ग/राम हृदय** - 'रामं विद्धि परम ब्रह्म...स्वप्रकाशं अकल्मिषम्' - राम का निनि० स्वरूप सच्चिदानंद परम ब्रह्म परमात्मा है। राम एक अद्वितीय निर्विकार, माया से परे आकाश के समान सर्वत्र सर्व देश-काल-वस्तु में व्यापक है, हमारी तुम्हारी आत्मा है यानि राम का निनि० स्वरूप हमारा तुम्हारा स्वरूप है। अब प्रसंग से मेरा भी स्वरूप जान लो - // **सीताजी द्वारा अपना स्वरूप निरूपण** - 'मामु विद्धि मूल प्रकृति...सुजामेद मतन्विता' - मैं मूल प्रकृति हूँ, मुझे ही महामाया शक्ति कहते हैं। जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार मैं ही करती हूँ राम नहीं करते, राम अकर्म हैं, राम चलते-फिरते उठते-बैठते या शोक नहीं करते हैं। ईश्वर और जीव दोनों के शरीरों/दे०इ०म०बु० की रचना मैं ही करती है। जीव और ईश्वर का निनि० स्वरूप अभेद हैं, ससा० रूप में ही भेद है, इनकी उत्पत्ति-संहार मैं ही करती हूँ यानि राम कृष्ण आदि ईश्वरावतारों के तथा स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी जीव के ससा० स्वरूप का उत्पत्ति-संहार मैं ही करती हूँ। जीवात्मा-परमात्मा को मैं नहीं बनाती हूँ वे अजन्मा हैं। मैं राम की शक्ति हूँ। राम की सत्ता-स्फूर्ति पाकर मैं ही सब काम करती हूँ राम कुछ नहीं करते। बिजली के समान राम हैं तथा ये शरीर मशीनों के समान है। दृश्य मेरा रूप है राम द्रष्टा है। << रामकथा + सहस्त्रमुख रावण का प्रसंग संक्षेप में >> निनि० द्रष्टा-साक्षी राम सबके भीतर हैं, ये संसार सब मेरी ही रचना है। जितने भी कर्म हैं सीता/माया/प्रकृति में है, हमारा-तुम्हारा स्वरूप राम है उसका जन्म नहीं होता, राम का रूप अजर-अमर अविनाशी जीवात्मा है ।।	
28	28 Jun	34	⊕			वेद कहता है **सृष्टि के आदि में एक मात्र परमब्रह्म सच्चिदानंद परमात्मा ही थे और कोई नहीं था** । उस परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ - इस प्रकार आत्मा और परमात्मा का एकत्व बताया है। आकाश से वायु→अग्नि →जल→पृथ्वी→औषधियाँ (आम, अमरूद, आँवला, पीपल आदि)→अन्न (गेहूँ, जौ, चना आदि)→ शुक्र/वीर्य उत्पन्न हुआ ।। शुक्र अन्न की ७तवीं धातु है, अन्न →रस→रक्त→माँस→मेदा→अस्थि→मज्जा→ शुक्र ।। 'आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी' पंचभूतों के पंचीकरण से उत्पन्न २५ तत्त्वों का स्थूल शरीर व अपंचीकृत पंचभूतों से १६ तत्त्वों के सूक्ष्म शरीर की रचना होती है .. स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर रचना सविस्तार .. सभी कर्म सूक्ष्म शरीर में होते हैं। अपने स्वरूप को न जानना कि हमारा स्वरूप जीवात्मा है - ये शरीर नहीं है, ये अज्ञान ही तीसरा **कारण शरीर** है, हम-आप **चौथे** हैं। ये ३ शरीर मकान के समान हैं और हम मकान में रहने वाले मकान-मालिक के समान है। हम तीनों शरीरों को जानते हैं पर इन शरीरों को ज्ञान नहीं है // तीन शरीरों के अन्तर्गत् **तीन अवस्थायें** हैं - **जागृत** में स्थूल श० दीखते हैं, **स्वप्न** में सूक्ष्म श० मन में ही दीखते हैं तथा **सुषुप्ति** में स्थू०-सू० दोनों शरीर लीन हो जाते हैं, सुषुप्ति अज्ञान-अंधकार रूप है // तीन शरीरों के अन्तर्गत् ही **पाँच कोष** हैं - १. अन्नमयकोष = अन्न से उत्पन्न स्थूल शरीर २. प्राणमयकोष = ५ प्राण + ५ कर्मेन्द्रियाँ ३. मनोमयकोष = ५ ज्ञानेन्द्रियाँ + मन ४. विज्ञानमयकोष = बुद्धि + ५ ज्ञानेन्द्रियाँ ५. आनंदमयकोष = अपने स्वरूप का अज्ञान । तीन शरीर, तीन अवस्थायें अथवा पाँच कोष - सब एक ही बात है, ये सब माया है चौथा हमारा स्वरूप है। हम तीनों शरीर व तीनों अवस्थाओं को देखते हैं। तीनों अवस्थायें २४ घंटे में आती-जाती हैं, बदलती रहती हैं पर हम वही के वही रहते हैं। हम जीवात्मा हैं चेतन हैं जड़ शरीर नहीं हैं। नाम-रूप शरीरों के धर्म हैं जीवात्मा के नहीं, सारा जगत ३ शरीर रूप ही है। हमारा तुम्हारा स्वरूप सच्चिदानंद परमात्मा है। हम न जन्मते हैं न मरते हैं, शरीर ही जन्मते-मरते हैं //	
29	29 Jun	29	⊕	**सीता-राम का स्वरूप**		**भगवान राम और सीता जगत के माता पिता हैं**, सम्पूर्ण सृष्टि इन्हीं से उत्पन्न होती है। इन्हीं को प्रकृति-पुरुष, गौरी-शंकर, लक्ष्मी-नारायण कहते हैं। सुर-असुर, नर-नारी, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत सभी के ये माता-पिता हैं। सन्तान माता-पिता का ही रूप होते हैं। जगत के माता-पिता सीता-राम हैं इसलिये हमारा स्वरूप भी सीता-राम ही है क्योंकि हम उनकी सन्तान हैं। राम चेतन हैं व सीता का स्वरूप जड़ है। राम पुरुष के व सीता छाया के समान हैं। हमारा-तुम्हारा शरीर सीता का स्वरूप है तथा इन शरीरों में बैठकर जो देख रहा है वही राम है। उन्हें ही सच्चिदानंद ब्रह्म परमात्मा कहते हैं। जीव भी राम का ही अंश है। सीता-राम का कैसा सम्बन्ध है? - **'राम'** - ये *शब्द* सीता है और इसका *अर्थ* राम है - राम सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण, परमप्रकाश रूप, उदय-अस्त रहित ज्ञान के सूर्य हैं, राम भगवान हैं, परमसत्य रूप/परमार्थ रूप हैं। राम के अंश होने से हमारा ज्ञान-सूर्य भी उदय-अस्त रहित सदा प्रकाशमान रहता है। अंश कभी अंशी से अलग नहीं होते, सूर्य की किरणें सूर्य से अलग नहीं हैं इसलिये जीव राम से अलग नहीं है। राम के अतिरिक्त अन्य (सूर्य, चन्द्र, तारागण, विद्युत व अग्नि) किसी का प्रकाश २४ घंटे नहीं रहता, पर हम जीव का ज्ञानप्रकाश भी सदा रहता है - हम दिन को जानते हैं, रात्रि को जानते हैं, हम प्रत्येक दिन, मास, वर्ष, युग, कल्प को जानते हैं, ये आते-जाते हैं पर हम न आते हैं न जाते हैं द्रव जल एक है तरंगें अनेक हैं परन्तु तरंगें जल से पृथक नहीं होंती। राम जल हैं और सीता तरंग हैं। सीता नर-नारी पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत के रूप में लहरों के समान हैं और राम सच्चिदानंद सिन्धु जल के समान हैं। राम एक हैं तथा दे०इ०म०बु०रूपी तरंग-सीता अनेक हैं। लहर जल से भिन्न नहीं है क्योंकि पकड़ने पर हाथ में जल ही आता है। लहर आँखों का धोखा है, लहर तो वाणी में ही है, लहरों का वास्तविक स्वरूप जल ही है। कहने को लहर और जल अलग है पर वास्तव में दोनों एक हैं इसलिये ये शरीर सीता का रूप तथा जीव राम का स्वरूप हैं ।।	
30	30 Jun	35	⊕			वेद कहता है कि सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद परमात्मा ही थे और कोई नहीं था। सबसे पहले उनमें **ओंकार** का प्रादुर्भाव हुआ। इच्छा से पहले वह ब्रह्म में समाया, परमब्रह्म रूप ही था तब इसका नाम **परा** वाणी था, जब मन में आया तो इसका नाम **पश्यन्ति** हुआ, फिर कंठ में आया तो **मध्यमा** हुआ और जब मुख में आकर फिर मुख से बाहर स्वर-व्यंजन के रूप में बिखर गया तो **बैखरी** कहलाया - इस प्रकार ओंकार के परा, पश्यन्ति, मध्यमा, बैखरी ४ नाम हो गये < स्वर-व्यंजन विस्तार > भगवान कहते हैं कि अक्षरों में मैं अकार हूँ जो सभी व्यंजनों में समाया है। पाणिनी जी ने १४ सूत्रों में सभी स्वर-व्यंजन गूँथ दिये हैं। इतने ही स्वर-व्यंजनों से सब नाम-रूप बन जाते हैं। सारा संसार नाम-रूप से ही तो भरा है। सभी नाम सुगन्त से और क्रिया तिगन्त से बनते हैं तथा 'नाम + क्रिया' से पद बनता है, जिससे सब व्यवहार होता है। नाम-रूप ही संसार है, ये सब ओंकार ही हैं। हमारे शरीर का नाम-रूप है तथा हम इस नाम-रूप शरीर को देखने वाले हैं, सबमें समाये हुए हैं। 'नाम-रूप' - ओंकार है, इसे प्रकृति अथवा प्रणव भी कहते हैं इस प्रकार दिखाई पड़ने वाले नाम-रूप को ओंकार कहते हैं तथा नाम-रूप को देखने वाले सर्वत्र व्यापक को आत्मा कहते हैं, वह ज्ञान स्वरूप है उसे ही परमात्मा कहते हैं। *नाम-रूप शरीर ओंकार का स्वरूप है तथा उसमें बैठकर देखने वाला आत्मा है,* आत्मा का जन्म-मरण नहीं होता, हम सदा ज्यों का त्यों रहते हैं, बनते-बिगड़ते नहीं हैं। ये शरीर नाम-रूप ओंकार का स्वरूप है ।।	
31	31 Jun	27	⊕			**पाँच माताओं का वर्णन**	1
32	32 Jun	39				वेद कहता है कि सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद भगवान ही थे और कोई नहीं था। भगवान को ही परमात्मा, ब्रह्म अथवा तत्त्व कहते हैं। सबसे पहले उनमें **ओंकार** का प्रादुर्भाव हुआ, इच्छा से पहले वह ब्रह्म में समाया हुआ परमब्रह्म रूप ही था तब इसका नाम **परा** वाणी था, जब मन में आया तो इसका नाम **पश्यन्ति** हुआ, फिर कंठ में आया तो **मध्यमा** हुआ और जब मुख में आकर फिर मुख से बाहर स्वर-व्यंजन के रूप में बिखर गया तो **बैखरी** कहलाया - इस प्रकार ओंकार के परा, पश्यन्ति, मध्यमा, बैखरी	

			⊕	ओंकार का स्वरूप	४ नाम हो गये। सब नाम-रूप ओंकार का ही स्वरूप हैं, इसे प्रणव भी कहते हैं। वेद व सारा संसार ओंकार का ही विस्तार है यानि इस प्रकार सारा संसार ओंकार ने ही धारण कर लिया है। मुख्य रूप से ओंकार में ३ मात्रायें हैं - अकार, उकार और मकार। **अ-उ-म** तीनों को मिला दो तो **ओ३म्** बन जाता है। गीता में भ०कृष्ण कहते हैं कि एक अक्षर का ये भगवान का सबसे छोटा एवं सर्वश्रेष्ठ नाम है तथा *इसका ध्यान करते हुए जो प्राण प्रयाण करता है वह परमगति को प्राप्त कर लेता है।* भगवान को प्राप्त करने पर ये जीव ८४ लाख योनियों के भ्रमण से मुक्त हो जाता है। जैसे नदियाँ समुद्र में आकर अचल हो जाती हैं क्योंकि समुद्र नदियों की परम गति है ऐसे ही *भगवान को पाकर यानि परमात्मा में मिलकर जीव परमात्मरूप ही हो जाता है।* भ०कृष्ण गीता में कहते हैं कि मेरी भक्ति से ये जीव **'मैं जितना और जैसा हूँ'** मुझे तत्त्व से जानकर मुझमें ही प्रवेश कर जाता है। ऐसे जीव जब समुद्र रूपी हरि को पा जाता है तो सब दुःखों से मुक्त हो जाता है // **अ-उ-म** का अर्थ हुआ **सत्वगुण, रजोगुण व तमोगुण** । सत्व से विष्णु, रजो से ब्रह्मा और तमोगुण से शंकर की उत्पत्ति हुई, फिर इसने **३ लोक** - भूर्भुवःस्वः या पाताल-पृथ्वी-स्वर्ग, **३ शरीर** - स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीर का रूप धारण कर लिया, फिर वह **३ अवस्थायें** - जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति बन गया । सुषुप्ति से स्वप्न उत्पन्न होता है और स्वप्न से जागृत जगत हो जाता है फिर विपरीत क्रम से 'जा० और स्व०' सुषुप्ति में विलीन हो जाते हैं। मकार ने सुषुप्ति का रूप धारण कर लिया वह कारण शरीर है। कारण में कार्य लय हो जाता है अतः सु० कारण शरीर है और जा०-स्व० इसके कार्य हैं। सुषुप्ति से स्वप्न उत्पन्न होता है, स्वप्न से ये जागृत जगत हो जाता है। जागृत में स्थूल संसार है ये स्वप्न में सूक्ष्म रूप हो जाता है फिर स्वप्न अपने कारण सुषुप्ति में समा जाता है, सुषुप्ति अवस्था घोर अज्ञान-अंधकार रूप है वहाँ जा०-स्व० का संसार नहीं रहता है। इस प्रकार मकार ने सु० का रूप धारण किया। ओंकार को ही प्रकृति या प्रणव भी कहते हैं। जा०-स्व०-सु० बस इतनी ही कार्य-कारण माया है - जा० में स्थूल संसार, स्व० में सूक्ष्म संसार और सुषुप्ति में संसार समाप्त, घोर अज्ञान अंधकार, संसार है ही नहीं, दृ० **लक्ष्मण-परशुराम सम्वाद** - ऑख मूँद लो तो घोर अज्ञान अंधकार ही दिखाई पड़ता है क्योंकि जा०-स्व० का संसार समाप्त हो जाता है, सो जाने से महा प्रलय हो जायेगी - आप ब्राह्मण हो अतः अपने ब्रह्म स्वरूप में स्थित हो जाओ वह तो सुषु० से भी परे-आगे है, सुषु० में ही प्रलय हो गयी कोई नहीं बचा, आप जा०-स्व०-सु० को देखने वाले ४थे हो। ये तीनों तुम्हें नहीं जानते, इतनी ही माया है इनके आगे ४था तुरीय है वही तुम्हारा ब्रह्म स्वरूप है इसे ही समाधि कहते हैं। वह सच्चि० ब्रह्म ही हमारा तुम्हारा आत्मा है व आत्मा ही ब्रह्म है। अपने ब्रह्म स्वरूप में स्थित होना और सभी जीवों को अपने स्वरूप में जगाना ही ब्राह्मण का परम कर्तव्य हैं। **'जा०-स्व०-सु०'** इतना **ओंकार** का स्वरूप है इससे जो परे है वह भगवान का स्वरूप है जो ओंकार को जानता है। ओंकार तो अक्षर रूप है उसे ज्ञान नहीं है। ओंकार ये बताता है कि **इदं** मेरा स्वरूप है तथा जिसको मैं नहीं जानता पर जो मुझे जानता है वह ब्रह्म है यानि **तत्** पद से ओ३म् ब्रह्म को बताता है - हे जीव! **'तत्वमसि'** - वही तू है अर्थात् जो जा०-स्व०-सु० को जानता है वह ब्रह्म है //	
33	33 Jun	28	⊕		**पाँच माताओं का वर्णन**	2
34	34 Jun	36	⊕	स्कन्धोपनिषद —o— भगवान शंकर द्वारा आत्मा का स्वरूप निरूपण	वेद कहता है कि इस शरीर में जो आत्मा 'शिव' है वह तुम हो। ये देह देवालय है व इसमें जो बैठे हैं वह शिव हैं स्कन्धोपनिषद कार्तिकेय ने अपने पिता शिव से पूछा कि मेरा स्वरूप क्या है? तो भगवान शंकर बोले :- **'देहो देवालय प्रोक्ता....सोहं भावेन पूजये'** = ये देह देवालय है, देव के रहने का स्थान अर्थात् मन्दिर है व इसके अन्दर जो जीवात्मा है वह केवल शिव का (मेरा) स्वरूप है। तुम्हारी माता पार्वती ने सब देह रूपी मन्दिर बना दिये हैं इनमें मैं शिव (परम कल्याण स्वरूप) ही बैठा हूँ अतः तुम मेरा ही स्वरूप हो। संसार में जितने भी शरीर हैं सब तुम्हारी माता पार्वती ने बना दिये हैं, उसे ही प्रकृति कहते हैं (जो प्रकृष्ट रूप से सृष्टि करती है उसे प्रकृति कहते हैं) सभी देहों में मैं जीव रूप से बैठा हूँ। मनुष्य, पशु-पक्षी, मक्खी-मच्छर आदि के शरीर सब मन्दिर हैं उन सबमें मैं शिव ही जीवात्मा रूप से बैठा हूँ। **'मैं देह हूँ, स्त्री-पुरुष हूँ'** आदि अज्ञान का त्याग करो तथा वो जो शिव है वह मैं हूँ अर्थात् **'मैं सच्चिदानंद स्वरूप शिव हूँ'** इस भाव से मेरा पूजन करो। देह जड़ है और इसे देखने वाला चेतन शिव मैं ही हूँ। तुम अपने आपको मुझ शिव का व अपने देह को पार्वती का अंश जानो। सभी शरीरों में मैं अकेला ही बैठकर देखने वाला हूँ। देवालय तो अनेक हैं परन्तु देव एक ही है **'एको देवा सर्वभूतेषु गूढ़ाः ....केवलो निर्गुणश्च'** - देखने वाले को देव कहते हैं और जो दिखाई पड़ता है वह माया है, प्रकृति है। देव सब देहों में छिपा हुआ, सर्वव्यापक, कर्मों का अध्यक्ष-अधिष्ठान (सभी कर्म देह में होते हैं), साक्षी-चेतन, एक अद्वितीय एवं गुणातीत है। द्रष्टा अदृष्ट ही रहता है। हे स्कन्ध ! **'दृग दृश्य द्वौ रूपे ....सर्व वेदान्त निर्णय'** - *द्रष्टा और दृश्य दो ही स्वरूप हैं। द्रष्टा ब्रह्म है और दृश्य माया है। माया असत-जड़-दुःखरूप है और देखने वाला सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म है, हे स्कन्ध वही तेरा भी स्वरूप है। मैं देह नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ। जो सब देहों में बैठकर देख रहा है वह आत्मा एक है* - **मैं वह आत्मा हूँ** - *ऐसा दृढ़ निश्चय ही* **ज्ञान** है। जैसे अज्ञान-अवस्था में जीव का यही निश्चय रहता है कि *'मैं देह हूँ'* - ऐसे ही *इसे छोड़कर* ज्ञान-अवस्था में *'मैं आत्मा हूँ'* ऐसा निश्चय करते हुए वह इच्छा न करते हुए भी सर्वथा मुक्त है। **आत्मा का स्वरूप :-** ***'आत्मा साक्षी विभु पूर्ण एको मुक्तः चिदक्रियः, असंगो निस्पृहः शान्तो भ्रमात् संसारवान् इव'*** - मैं शरीर हूँ' यह भ्रम है, जीवात्मा स्त्री-पुरुष नहीं है किन्तु सबके भीतर है। दो प्रकार का अहंकार होता है - १. मैं देह हूँ - ये **अशुद्ध अहंकार** है जो जन्म-मरण बन्धन कारक है २. मैं साक्षी-चेतन ब्रह्म हूँ - ये **शुद्ध अहंकार** है जो मुक्तिदायक है ।।	
35	35 Jun	38	⊕	पंच भ्रम —o— भेद भ्रम & कर्ता–भोक्ता भ्रम	**अन्नपूर्णोपनिषद** पंच भ्रम वेद कहता है कि पाँच प्रकार के भ्रम हैं :- १ भेद भ्रान्ति - जीव-ईश्वर भिन्न भिन्न हैं २ कर्तृत्व-भोक्तृत्व भ्रान्ति - आत्मा कर्ता-भोक्ता है ३ संग भ्रान्ति - तीनों शरीरों से जीव का_संग हो गया है ४ कारण-रूप परमात्मा का ये जगत विकार है ५ अपने कारण परमात्मा से ये जगत भिन्न है और सत्य है १ **भेद भ्रम** = 'जीव और ईश्वर दोनों का भेद है, दोनो अलग-२ हैं' बिम्ब- प्रतिबिम्ब के दृष्टान्त से इस भ्रम की निवृत्ति बतायी गयी है। दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ने से एक ही वस्तु बिम्ब और प्रतिबिम्ब दो रूप में दिखाई पड़ती है, देखने वाले को बिम्ब व दिखाई पड़ने वाले को प्रतिबिम्ब कहते हैं पर वास्तव में तो दोनों एक ही हैं। जैसे सूर्य में बिम्ब और प्रतिबिम्ब दोनों ही कल्पित हैं, सूर्य ही सत्य है ऐसे ही ईश्वर और जीव दोनों ब्रह्म में कल्पित हैं। कल्पित वस्तु सत्य नहीं होती पर सत्य से भिन्न नहीं होती इसलिये जीव-ईश्वर ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं वह ब्रह्मरूप ही हैं २ **कर्ता-भोक्ता भ्रम** = दृ० जैसे लाल फूल की लालिमा से स्फटिक मणि लाल दिखाई पड़ती है इसी प्रकार आत्मा में दे०इ०म०बु० के धर्म (कर्ता- भोक्तापन) आत्मा में दिखाई पड़ते हैं। वास्तव में आत्मा यानि हम अकर्ता हैं, भ्रम से दे०इ०म०बु० के धर्म हमारी आत्मा में दिखाई पड़ते हैं। सुषुप्ति और समाधि में हमारा आत्मा शुद्ध रहता है वहाँ दे०इ०म०बु० के धर्म नहीं भासते। मन और इन्द्रियों में जो कर्म मालूम पड़ते हैं वे वास्तव में आत्मा में नहीं हैं। आत्मा द्रष्टा-साक्षी है, वह न करता है न करवाता है। हमारा शरीर ९ द्वार का पुर है, इसमें हम द्रष्टा-साक्षी के रूप में रहते हैं, न कुछ करते हैं न करवाते हैं और न भोक्ता हैं। ऐसे ही परमात्मा भी कुछ नहीं करता है, परमात्मा में न कर्म है और न कर्तृत्व है - स्वभाव से ही/स्वयं ही/अपने आप ही ये जगत होता है। जा०-स्व०सु० बस इतनी ही माया है, इन्हीं में मन-बुद्धि-प्राण हैं। हम जा०-स्व०-सु० के कर्ता नहीं हैं, हम इन्हें बनाते नहीं हैं बस इन्हें देखते हैं। जा०-स्व० होते हैं व सुषुप्ति में लय हो जाते हैं - हम कुछ नहीं करते, हम द्रष्टा-साक्षी केवल देखते हैं, ये स्वयं ही होते रहते हैं, अपने आप आते-जाते हैं - इसी का नाम माया है, प्रकृति है। हम केवल साक्षी-चेतन हैं, अकेले एक अद्वितीय हैं। माया मात्र ही द्वैत है। हमारा तुम्हारा स्वरूप तो केवल बोध है, ज्ञान है **।। श्री शंकराचार्यजी के शिष्य हस्तामलक द्वारा अपना स्वरूप वर्णन :: 'नाहं मनुष्यो न च देव यक्षो ......निज बोध रूपः' ।।** मैं मनुष्य देव यक्ष ब्राह्मण क्षत्रिय ब्रह्मचारी गृहस्थ आदि नहीं हूँ, इन सबमें हूँ पर सब नहीं हूँ जैसे घर में रहने वाला घर नहीं हो जाता ऐसे ही मैं ब्रह्मचारी-गृहस्थ स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि सबमें रहता हूँ, सबको जानता हूँ, मेरा स्वरूप **'ज्ञान'** है, मैं **'बोधरूप'** हूँ, बोध नाम ज्ञान का है। ये शरीर हमारे तुम्हारे मकान हैं। हम तो इन शरीरों में रहने वाले चेतन बोधरूप हैं - ज्ञानरूप है - हम जानने वाले हैं, हम स्त्री-पुरुष-नपुन्सक पशु-पक्षी आदि नहीं हैं, इन्हें ज्ञान नहीं है। जीवात्मा सबमें है, सबको जानता है। ये स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि तो शरीरों के नाम और रूप हैं। अज्ञानता से शरीरों के धर्म आत्मा में भासते हैं, सुषुप्ति और समाधि में दे०इ०म०बु० नहीं रहते पर हम रहते हैं ।।	1
36	36 Jun	39		पंच भ्रम	**अन्नपूर्णोपनिषद** पंच भ्रम वेद कहता है कि पाँच प्रकार के भ्रम हैं :- १ भेद भ्रान्ति - जीव-ईश्वर भिन्न भिन्न हैं २ कर्तृत्व-भोक्तृत्व भ्रान्ति - आत्मा कर्ता-भोक्ता है ३ संग भ्रान्ति - तीनों शरीरों से जीव का_संग हो गया है ४ कारण-रूप परमात्मा का ये जगत विकार है ५ अपने कारण परमात्मा से ये जगत भिन्न है और सत्य है ।। *भ्रम का अर्थ हेता है - जो जिसमें न होवे पर उसमें वैसी बुद्धि हो जाने को भ्रम कहते हैं* ।। १ **भेद भ्रम** = बिम्ब और प्रतिबिम्ब के दृष्टान्त से भेद भ्रम की निवृत्ति कर लेनी चाहिये। जैसे बिम्ब और प्रतिबिम्ब सूर्य में दोनों ही कल्पित हैं ऐसे ही जीव और ईश्वरपना ब्रह्म में कल्पित हैं ये सत्य नहीं	

			⊕	—0— ३ संगभ्रम ४ विकार भ्रम & ५ भग० से जगत भिन्न एवं सत्य भ्रम	है, जीव और ईश्वर का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म ही है क्योंकि ब्रह्म में पुरुष में छाया के समान माया होती है जो शुद्ध-सत्व गुण की प्रधानता से विद्या और मलिन-सत्व गुण की प्रधनता से अविद्या का रूप धारण करती है। विद्या में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ईश्वर कहलाता है और अविद्या में पड़ा ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव कहलाता है। तो पुरुष की छाया के समान ये माया है इसलिये ये माया कल्पित है, विद्या-अविद्या माया में पड़े प्रतिबिम्ब भी कल्पित इसलिये ब्रह्म ही सत्य है, जीव और ईश्वर दोनों कल्पित हैं। अतः जीव-ईश्वर के वास्तविक ब्रह्म स्वरूप में अभेद है विद्या-अविद्या माया उपाधि से इनमें भेद मालूम पड़ता है २ **कर्ता-भोक्ता भ्रम** = हमारी आत्मा में कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं है, कर्तृत्व-भोक्तृत्व माया में ही है। माया से ही दे०इ०म०बु०प्रा० उत्पन्न होते हैं और दे०इ०म०बु०प्रा० में ही सब कर्म हुआ करते हैं। जीव का स्वरूप तो नि०नि० है उसमें दे०इ०म०बु०प्रा० नहीं हैं अतः आत्मा में कर्म नहीं होते, सभी कर्म प्रकृति राज्य में ही हैं। दे०इ०म०बु०प्रा० के कर्म आत्मा में भासते हैं, दृष्टान्त - जैसे लाल फूल की लालिमा से स्फटिक मणि लाल दिखाई पड़ती है इसी प्रकार दे०इ०म०बु० के धर्म (कर्ता-भोक्तापना) आत्मा में दिखाई पड़ते हैं। जब दे०इ०म०बु० सुषुप्ति में नहीं रहते तो आत्मा में कर्तृत्व-भोक्तृत्व भी नहीं भासते। जो ज्ञानी पुरुष आत्मा को अकर्ता जानता है तथा सभी कर्म प्रकृति में हैं ऐसा जानता है - वही वास्तविक ज्ञान है। **कर्म के ५ हेतु होते हैं :-** १.अधिष्ठान-देह २.कर्ता-साभास बुद्धि ३.करण-इन्द्रियाँ ४.चेष्टायें-प्राण ५.देवम्-इन्द्रियों के अलग-अलग अनुग्राहक देवता । सभी कर्मों के ये ही हेतु हैं, इन पाँचों से ही कर्म होता है। द्रष्टा-साक्षी चेतन आत्मा में कोई कर्म नहीं होता, आत्मा दे०इ०म०बु० से परे है। अज्ञानी अपनी आत्मा को ही कर्ता मान लेते हैं - अपनी आत्मा में इ०म०बु० के कर्मों को आरोपित कर लेते हैं ।। प्रकृति में जा०स्व०सु० स्वभाव से अपने आप ही होते रहते हैं, इन्हें न जीव कराता है न ईश्वर कराता है। हम द्रष्टा हैं इन्हें देखते जरूर हैं। हम ४थे हैं इनसे अलग बस देखते हैं है ३ **संग भ्रान्ति** = आत्मा का स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीर से संग नहीं होता। जा०-स्व० सुषुप्ति से उत्पन्न होते हैं व पुनः सुषुप्ति में ही लीन हो जाते हैं। ये कार्य-कारण माया है, हम इस माया के द्रष्टा हैं, हमारा स्वरूप तो ४था इस कार्य-कारण माया को देखने वाला है। हम तीनों शरीरों में रहते हैं, तीनों को देखते हैं पर इनसे मिलते नहीं हैं, असंग रहते हैं। ये चेतन पुरुष असंग है। 'तीनों शरीरों से जीव का संग हो गया है' - इस भ्रम की निवृत्ति आकाश के दृष्टान्त से करना चाहिये जैसे घटाकाश-मठाकाश का घट-मठ से संग नहीं होता ४ **परमात्मा का जगत विकार है** = सर्प-रज्जु के दृष्टान्त से इस भ्रम की निवृत्ति की गयी है। रज्जु में सर्प का दीखना रज्जु का विकार नहीं है, सत्तु के अज्ञान से सर्प भ्रान्ति से दिखाई देता है। ऐसे ही ये जगत ब्रह्म का विकार नहीं है अपितु भ्रम से ब्रह्म ही जगत के रूप में दिखाई पड़ रहा है। विकार का अर्थ होता है बदलना-विकृति जैसे दूध से दही बनना, विकारी होगा तो विनाशी हो जायेगा अतः जगत ब्रह्म का विकार नहीं है अपितु विवर्त है। रज्जु अपने स्वरूप से नहीं बदलती परन्तु सर्प रूप में दिखाई पड़ने को विवर्त भ्रम कहते हैं। ये संसार रज्जु में सर्प के समान भ्रान्ति है, जैसे रज्जु के अज्ञान से रज्जु में सर्प भासता है ऐसे ही आत्मा के अज्ञान से ये संसार सर्प भासता है इसलिये ये संसार ब्रह्म का विवर्त है परिणम नहीं है ५ **परमात्मा से जगत भिन्न एवं सत्य है** = स्वर्ण और आभूषण के दृष्टान्त से इस भ्रम की निवृत्ति कर देनी चाहिये। जैसे स्वर्ण से सभी आभूषण बनते हैं अतः आभूषण स्वर्ण से अभिन्न है ऐसे ही भगवान से उत्पन्न ये जगत भगवान से अभिन्न है। भगवान संसार में समाये हैं अतः ये संसार भगवान से भिन्न नहीं है ।।	
37	37 Jun	29	⊕	⊕	⊕	वेद कहता है - *'अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश अन्तकं, आद्यत्रयं ब्रह्म रूपं जगत रूपं ततो द्वयं'* - इस संसार में ५ अंश हैं। **'अस्ति-भाति-प्रिय'** ब्रह्म का स्वरूप है और **'नाम-रूप'** जगत का स्वरूप है। नाम-रूप बनते-बिगड़ते रहते हैं, आने-जाने वाले को ही जगत कहते हैं। **अस्ति** = है = **सत्** = जो सदा रहे, **भाति** = **चिद्** = ज्ञान, **प्रिय** = **आनंद** अतः सत्-चिद्-आनंद कहो या अस्ति-भाति-प्रिय कहो एक ही बात है। अस्ति-भाति-प्रिय ब्रह्म के ही पर्याय हैं, अस्ति-भाति-प्रिय नाम-रूप में ऐसे ही व्यापक हैं जैसे माटी घट-मठ में। अस्ति-भाति-प्रिय आकाश के समान सर्वत्र व्यापक है दृष्टान्त - केवल घट कहने से तो व्यवहार बनेगा नहीं अतः **'घट है'** कहना पड़ेगा, इसमें **है** = **अस्ति**, **'घट भासता है'** = **चिद्, घट प्रिय** है क्योंकि पानी भरने के काम आता है इसमें घट की प्रियता **ब्रह्म** की है अर्थात् घट में जो अस्ति-भाति-प्रिय है ये ब्रह्म का है। घट के नाश होने पर घट का नाम-रूप चला गया अब अस्ति-भाति-प्रिय माटी अथवा पृथ्वी में है, पृथ्वी का अस्ति-भाति-प्रिय ब्रह्म का है। ऐसे ही पृथ्वी का नाम-रूप प्रलय आने पर जल में लय हो जायेगा, अस्ति-भाति-प्रिय जल में व्यापक है - इस प्रकार नाम-रूप लय होते जाते हैं पर अस्ति-भाति-प्रिय सदा रहता है। जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में और समय आने पर आकाश भी ब्रह्म में लीन हो जाता है। ब्रह्म यानि आत्मा की तो उत्पत्ति भयी नहीं है तब एक ब्रह्म ही रह जाता है। आत्मा-परमात्मा एक ही है। आत्मा से ही आकाश→वायु→अग्नि→जल→पृथ्वी की उत्पत्ति होती है तथा विपरीत क्रम से लय होने पर आत्म तत्त्व ही शेष रह जाता है। इसे आत्म-तत्त्व कहो अथवा परमात्म-तत्त्व कहो एक ही बात है। ब्रह्म ही आदि में है, ब्रह्म ही अन्त में रह जाता है तथा बीच में भगवान की माया से जगत की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय होती रहती है। हमारा स्वरूप आत्मा या परमात्मा है जो सर्वत्र व्यापक है। **'अस्ति-भाति-प्रिय'** रूप से हमारी आत्मा में ही - पुरुष में छाया के समान, रज्जु में सर्प के समान इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होती रहती है। हमारा स्वरूप सच्चिदानंद आत्मा है
38	38 Jun	38		ज्ञान की ७ भूमिकाएं		**वराह उ० :: ज्ञान की ७ भूमिकायें :: १** शुभेच्छा **२** विचारणा **३** तनमानसी **४** सत्वापत्ति **५** असनशक्ति **६** पदार्थाभावना **७** तुरीयगाह १ **शुभेच्छा** शुभ नाम शुभ स्वरूप परमात्मा का है। परमात्मा को पाने की इच्छा शुभेच्छा है। इसमें विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पदा व मुमुक्षुता ४ साधन बतलाये गये हैं १. विवेक - ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है, ब्रह्म नित्य है व जगत अनित्य है - ये विचार विवेक है २. वैराग्य - मिथ्या वस्तु में वैराग्य और सत्य वस्तु में अनुराग ३. षट्क सम्पदा - **शम** -मन को विषयों से रोकना, **दम** -इन्द्रियों को विषयों से रोकना, **उपरम्** -विषयों से वमन की भाँति वितृष्णा, तितीक्षा - मन के धर्म सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख आदि को सहर्ष सहन करना, **श्रद्धा** -वेद एवं गुरु के वचनों में विश्वास तथा **समाधान** -मन के शान्त होने को कहते हैं ४. मुमुक्षुता -इन सब साधनों के अनन्तर फिर ब्रह्म को जानने की प्रबल जिज्ञासा तथा मोक्ष की प्रबल इच्छा मुमुक्षुता कहलाती है व इन चतुष्ट्य साधन से सम्पन्न होना पहली भूमिका शुभेच्छा कहलाती है २ **विचारणा** *चतुष्ट्य साधन से सम्पन्न होकर गुरु के पास जाना विचारणा है। सभी जीव सुख के प्यासे हैं। प्रत्येक जीव सुख की प्यास बुझाने के लिये जगत में सुख की खोज करता है इसलिये वह स्त्री पुत्र धन राज्य में सुख ढूँढता है पर प्यास न बुझने पर परीक्षा करने के बाद ही सुख-दुःख का ज्ञान होता है व जब कहीं सुख नहीं मिलता तो वह वैराग्य को प्राप्त होता है क्योंकि उसने परीक्षा करके देख लिया है कि आत्म तत्त्व किसी कर्म अथवा स्त्री, पुत्र, धन से नहीं मिलता अतः उस परम ब्रह्म परमात्मा को जानने के लिये गुरु के पास जाना पड़ता है* गुरु के पास जाने पर ब्रह्म विचार आरम्भ होता है। **श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ गुरु** (*वेद को जानने वाला एवं जिसकी ब्रह्म में पूरी निष्ठा हो*) ही अपना व शिष्य का कल्याण कर सकता है क्योंकि कल्याण ब्रह्म निष्ठा से ही होता है। फिर गुरु अपनी शरण में आये हुए शिष्य को सम्यक ब्रह्म विद्या का उपदेश करे - ये विचारणा भूमिका है ३ **तनमानसी** ब्रह्म विद्या के उपदेश से मन की चंचलता (मन का संसार के विषयों में भागते रहना) क्षीर्ण हो जाती है। मन का शान्त या कृष होना तनमानसी है ४ **सत्वापत्ति** इस प्रकार शान्त मन होकर एकाग्र मन से जब वह ब्रह्म-विद्या सुनता है (सत्व = ब्रह्म, आपत्ति = प्राप्ति) तब उसे ४थी भूमिका सत्वापत्ति में ब्रह्म-ज्ञान / अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है ५ **असनशक्ति** इस संसार में आसक्ति बिल्कुल समाप्त हो जाती है - ये ५वीं भूमिका है ६ **पदार्थाभावनी** फिर वह समाधि में स्थित हो जाता है, पदार्थों का अभाव हो जाता है व इसके मन में एक ब्रह्म ही रहता है। संसार का कोई पदार्थ नहीं रहता व उसका मन एक ब्रह्म में ही रहता है ७ **तुरीयगाह** प्रगाढ़ समाधि के समान ७वीं भूमिका है जिसमें ज्ञानी समाधि में ही स्थिर रहता है लोक हित के लिये ४थी भूमिका वाला विद्वान/गुरु ही काम आता है क्योंकि वह ब्रह्म का विचार गाँव-गाँव, नगर-नगर में जा-जा करके सब लोगों को ब्रह्म तत्त्व का उपदेश करता है इसलिये लोकहित के काम में ४थी भूमिका वाले आते हैं तथा ५वीं, ६ठी व ७वीं भूमिका वाले समाधि में रहते हैं शास्त्र पढ़ने से संसार में सत्य बुद्धि नष्ट हो जाती है व ज्ञान होने पर संसार का अभाव हो जाता है। अपने ब्रह्म स्वरूप के अनुभव के बाद वह भुने हुए चने के समान हो जाता है जो क्षुधा तो शान्त कर सकता है पर अंकुरित नहीं हो सकता ऐसे ही इस ज्ञानी पुरुष का दूसरा जन्म तो नहीं होगा पर वह दूसरे लोगों का कल्याण अवश्य कर सकता है। प्रारब्ध पर्यन्त उसका शरीर रहेगा, प्रारब्ध पूरा होने पर उसे शरीर की प्रतीति भी नहीं रहेगी व शरीर पूरा हो जायेगा। ज्ञानाग्नि से शरीर दग्ध तो हो जाते हैं पर भगवान के संकल्प के अनुसार ये शरीर रहेगा व तब तक कर्म करना ही पड़ेगा। ईश्वर का संकल्प पूरा होने पर ये शरीर नष्ट हो जायेगा। संकल्प पूरा होने तक भस्म हुए	

					शरीर भी दीखते रहेंगे जैसे अग्नि जलने से ईंधन जल जाता है ऐसे ही ज्ञानाग्नि से सभी कर्म भस्म हो जाते हैं क्योंकि कर्म ही जन्म-मरण का बीज होता है ।।	
39	39 Jun	40		चिदाभास की सात अवस्थायें	चेतन के प्रतिबिम्ब को चिदाभास कहते हैं। वेद में **चिदाभास की ७ अवस्थायें** बताई गयी हैं ::- १. अज्ञान २. आवरण ३. विक्षेप ४. परोक्षज्ञान ५. अपरोक्षज्ञान ६. दुःख निवृत्ति ७. परमानंद/परम हर्ष प्राप्ति **१.अज्ञान** - जीव/चिदाभास को अपने चेतन स्वरूप बिम्ब ब्रह्म का ज्ञान नहीं है **२.आवरण** - ब्रह्म नहीं है *(असत्वापादक)* तथा ब्रह्म भासता नहीं है *(अभानापादक आवरण)* **३.विक्षेप** - पंचभूतों से प्रपंच यानि अनंतकोटि ब्रह्माण्डात्मक जगत की उत्पत्ति (२५ तत्त्वों का स्थूल श०, १६ तत्त्वों का सूक्ष्म श० एवं स्वरूप अज्ञान रूपी कारण श०) - चतुष्टय अन्तःकरण में भगवान का प्रतिबिम्ब प्रकट होता है। ये जीव/चिदाभास अपने बिम्ब स्वरूप भगवत् तत्व को न जानने के कारण दुःखी रहता है इसलिये इसे दो प्रकार का आवरण है जिसके कारण विक्षेप उत्पन्न होता है। ये पंचभूत व उनसे उत्पन्न ३ शरीर तथा अपने स्वरूप को न जानने से दुःख उत्पन्न होना - ये सब विक्षेप है। अब जब ये जीव गुरु के पास जाता है तो गुरु उसे महावाक्य सुनाते हैं - **'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म'**, **सत्यं** = सदा रहने वाला, **ज्ञानं** = अनंत अखण्ड चिद् स्वरूप, **अनंतं** = अनंत आनंद का सिन्धु - ऐसा सच्चिदानंद ब्रह्म का स्वरूप है। इसको सुन कर जीव को परोक्ष ज्ञान होता है यानि ब्रह्म है तथा उसका स्वरूप **'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म'** है, ये ब्रह्म का **स्वरूप लक्षण** है। ब्रह्म को बताने के लिये **तटस्थ लक्षण** या **उपलक्षण** - जिसमें ये जगत उत्पन्न उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है व जिसमें लय हो जाता है वह ब्रह्म है दृ० ज्ञानी ब्रह्म दत्त और यज्ञ दत्त ब्राह्मण का ।। जो जिसके एक देश में हो व्यावर्तक हो कदाचित हो - उसे तटस्थ या उपलक्षण कहते हैं - 'मयि अखण्ड सुखाम् बोधउ.....माया मारुत विभ्रमात्', 'यतो व ईमानि जायंते.....तद् ब्रह्म' ।। ये संसार ब्रह्म से उत्पन्न होता है, उसी में रहता है, सदा नहीं रहता यानि कदाचित है व उसी में लय हो जाता है // हमारे नेत्रों की देखने की क्षमता सीमित है, अधिक निकट अथवा अधिक दूर दोनों ही हमारे नेत्र नहीं देख सकते। हमें अपना मुख भी नहीं दिखाई पड़ता, अपना मुख देखने के लिये हमें दर्पण की आवश्यकता होती है। दर्पण में दीखने वाला मुख सत्य नहीं है वह प्रतिबिम्ब है। प्रतिबिम्ब सत्य स्वरूप का ज्ञान तो अवश्य करा देता है पर उसमें देखना, बोलना, चलना आदि नहीं होता अतः दर्पण में हमारी छाया ही दिखाई पड़ती है जो शरीर के रूप का ज्ञान तो अवश्य कराती है पर वे सच्चे स्त्री-पुरुष की तरह देख-बोल तो नहीं सकते। ऐसे ही हमारी आत्मा दर्पण के समान है। TV के शीशे में दिखाई पड़ने वाले छाया-चित्रों के समान ही सारा संसार छाया-चित्र के समान हमारी आत्मा में दिखाई पड़ता है क्योंकि हमारा आत्मा भी ठोस शीशा के समान सत्-घन चित्घन आनंदघन है तो इसमें संसार कैसे आयेगा, केवल संसार का चित्र ही आ सकता है जो आत्मा रूपी दर्पण में ये दिखाई पड़ता है। भगवान कृष्ण कहते हैं कि हमारे अनंत आनंद सिन्धु आत्मा में माया-रूपी पवन के निमित्त से विश्व-रूपी तरंगें (पंचभूत व पंचभूतों से बने स्त्री-पुरुष, वृक्ष-पर्वत आदि लहरें हैं) उत्पन्न हो-होकर नाश होती रहती हैं और फिर एक आनंद सिन्धु आत्मा ही रह जाता है अतः ये संसार कदाचित् है। *ये संसार भगवान के (तिलभर जगह में हैं) एक देश में है, कदाचित् है और व्यावर्तक है क्योंकि भगवान को बतलाने में ये चिन्ह जो बन गया है* //
40	40 Jun	41	⊕	⊕ ⊕	वेद में हमारे-तुम्हारे स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि के *शरीरों* को **रथ** बताया है और इसमें बैठा हुआ *आत्मा* को, जो केवल देखता है **रथी** बताया है, रथ में बैठने वाला आत्मा केवल बैठा हुआ देखता है कुछ करता नहीं है - द्रष्टा साक्षी मात्र है। हम देखने वाले आँख, कान, नाक आदि खिड़कियों से देखते मात्र हैं। इस रथ को चलाने वाली *बुद्धि* **सारथी** है। बुद्धि में रथी आत्मा का थोड़ा ज्ञान प्रकट होता है उसे प्रतिबिम्ब कहते हैं इसलिये बुद्धि में भी आभास-रूप ज्ञान है इस शरीर रूपी रथ को चलाने के लिये। *मन* को **लगाम** व *इन्द्रियों* को **घोड़े** बताया है। 'शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध' *विषय* **मार्ग** हैं, इन्हीं मार्गों में इन्द्रिय-रूपी घोड़े चलते हैं। इस प्रकार से **आत्मा-इन्द्रिय-मन-रथ सब मिलकर सुख-दुःख के भोक्ता होते हैं** (यद्यपि आत्मा अज्ञानवश इन सबसे मिलकर भोक्ता बनता है पर वास्तव में आत्मा भोक्ता है नहीं वह केवल द्रष्टा है भ्रमवश वह अपने को कर्ता-भोक्ता मानता है) अतः स्वयं को आत्मा रूपी रथी जानो, यह चेतन पुरुष असंग है // 'जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति' **माया** की ३ अवस्थायें बतायी गयी हैं, **चौथे** हम सब हैं जा०-स्व०-सु० को देखने वाले द्रष्टा-साक्षी। माया (जा०-स्व०-सु०) को ज्ञान नहीं है। हम आप इन तीनों को जानते हैं पर ये हमें नहीं जानते। **हमारा आपका स्वरूप सच्चिदानंद है** (**सत्** = हम सदा रहते हैं, **चिद्** = हम सदा एक समान उदय-अस्त रहित ज्ञान हैं, **आनंद** = अनंत अखण्ड आनंद के सिन्धु हैं) सच्चिदानंद हमारा स्वरूप है इसलिये हमें इसकी प्राप्ति नहीं करनी और असत्-जड़-दुःख रूप माया हम में है नहीं तो उसकी निवृत्ति नहीं करनी है, केवल नित्य-निवृत्त की निवृत्ति और नित्य प्राप्त की प्राप्ति को जानना ही है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि - आत्मा का **'जन्म-मरण'** है नहीं तो निवृत्ति किसकी करनी तथा **'सत्-चित्'** आत्मा का स्वरूप है तो उसकी प्राप्ति नहीं करनी। हमने अज्ञानतावश जड़ माया को अपना स्वरूप मान लिया है। **'जड़ता और दुःख'** आत्मा में है ही नहीं। आत्मा रूपी धन जन्म-मरण से सदा छूटा हुआ है, आत्मा आनंद का सिन्धु है / सुख का अनंत खजाना है, आत्मा ज्ञान का उदय-अस्त रहित सूर्य है। आत्मा के स्वरूप को जानना ही कर्तव्य है। दृ० संत एवं निर्धन सेठ की कथा हमारा खजाना इस जा०-स्व०-सु० रूपी प्रकृति से ढका हुआ है। जा०-स्व०सु० को प्रकृति या माया कहते हैं और आत्मा रूपी (सच्चिदानंद अपार धन) इसी के नीचे गड़ा हुआ है परन्तु जीव यह नहीं जानता। गुरु व संतलोग ये विद्या जानते हैं। सेठ रूपी जीव जब संतों की श्रद्धा-भक्ति करते हैं तो वे उसको बता देते हैं कि यदि तू विचार रूपी कुदाल से जा०-स्व०-सु० रूपी तीन हाथ ज़मीन हटा दे तो तुझे आत्मा-रूपी अपार खजाना मिल जायेगा और सब ग़रीबी दूर हो जायेगी। वहाँ जन्म-मरण नहीं है, अनंत ज्ञान एवं सुख समुद्र अपना स्वरूप है। हम-आप जा०-स्व०-सु० को देखने वाले द्रष्टा-साक्षी सच्चिदानंद स्वरूप हैं। हम आकाशवत् सब में व्यापक, नित्य सत्य और असंग हैं। सच्चिदानंद अपना स्वरूप है, इसी को आत्मा कहते हैं //
41	41 Jun	43	⊕	माण्डूक्य उपनिषद —०— भाग १	**कृष्ण यजुर्वेद :: मुक्तिकोपनिषद ::** अपने स्वरूप के ध्यान में निरत समाधि से जब भगवान राम उठे तो श्रद्धा-भक्ति से स्तुति करते हुए **मारुति ने पूछा** - हे राम ! तुम परमात्मा सच्चिदानंद विग्रह हो, हे रघुकुल शिरोमणि मैं आनको बारम्बार प्रणाम करता हूँ। हे राम ! में मुक्ति के लिये आपका वास्तविक स्वरूप जानना चाहता हूँ। सुना है कि आपके ससा० एवं निनि० दो स्वरूप हैं। *'चद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः राम मुक्तये, अनायासेन येनाहं मुच्चेयं भव बन्धनात्, कृपया वद्मे राम येन मुक्तो भवाम्यहम्'* अतः आप मुझे अपना निनि० स्वरूप बतायें, केवल मैं ही नहीं अपितु सभी जीव दुःख और मृत्यु से छूटना चाहते हैं। **भगवान राम बोले** - मेरा निनि० स्वरूप निरूपण वेदान्त में किया गया है अतः तुम वेदान्त का आश्रय लो। मुझ विष्णु के निःस्वास स्वरूप ये वेद हैं जैसे काष्ठ में अग्नि, तिल में तेल तथा दूध में घी समाया है ऐसे ही वेदान्त में सर्वत्र मेरा निनि० स्वरूप बताया गया है। इस पर **हनुमानजी बोले** - वेद कितने हैं? उनकी शाखायें कितनी हैं? व उनकी उपनिषदें कितनी हैं? हे राम तत्त्व से उन्हें मुझे बतायें। तब श्रीराम बोले - हे मरुत पुत्र ! ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०६, सामवेद की १००० तथा अथर्व वेद की ५० शाखायें हैं इस प्रकार सब मिलकर **११८०** शाखा हुईं। एक-२ शाखा की एक-२ उपनिषद है, उनमें से कोई एक ऋचा या उपनिषद भी भक्ति से पढ़ता है तो वह सायुज्य पद को प्राप्त होता है। 'सायुज्य' मुक्ति है। हे हनुमान ! मुक्ति ४ प्रकार की है :- सालोक्य - मेरे वैकुण्ठ में रहता है, सामीप्य - मेरे समीप रहता है, सारूप्य - मुझ विष्णु के चतुर्भुज रूप में रहता है और सायुज्य - वह मुझमें ही मिल जाता है, ये कैवल्य मुक्ति सर्वश्रेष्ठ है फिर जन्म-मरण नहीं होता हे हनुमान ! सभी उपनिषदों में १०८ उप० श्रेष्ठ मानी गयीं हैं, इनमें से भी **३२** तथा इनमें भी **१०** अधिक श्रेष्ठ हैं। इन्हीं १० पर श्री शंकराचार्यजी ने भाष्य लिखा है। इन १० में भी मुमुक्षु को उसकी मुक्ति के लिये केवल माण्डूक्य उप० पर्याप्त है। ये सब उपनिषदों में सबसे छोटी एवं सरल है, इसमें आत्मा-परमात्मा का सम्यक प्रकार से निरूपण किया गया है **< माण्डूक्य उप० >** हे हनुमान ! ओंकार - ये एक अक्षर ही सारा विश्व है, सारा संसार ओंकार का ही विस्तार है अतः भूत-भविष्य-वर्तमान सब ओंकार है। यद्यपि ब्रह्म एक अद्वितीय है पर माया से वह एक ब्रह्म क्षण भर में ४ रूप धर लेता है। **प्रथम चरण** - पहले चरण की जागृत अवस्था स्थान है, बाह्य ज्ञान है, सात लोक इसके ७ अंग हैं, इसके १६ मुख, स्थूल शरीर व स्थूल भोग है तथा इस प्रथम चरण का वैश्वानर नाम है, ये जागृत के सुख-दुःख का भोक्ता है ।।

42	42 Jun	34		माण्डूक्य उपनिषद —०— भाग २	< माण्डूक्य उप० > ओंकार से ये उपनिषद प्रारम्भ होती है। सम्पूर्ण चराचर जगत ओंकार का ही विस्तार है। जा०-स्व०-सु० / स्थू०-सू०-का० देह/ भूत-भविष्य-वर्तमान भी सब ओंकार का ही विस्तार है तथा त्रिकालातीत भी ओंकार है। हमारा तुम्हारा आत्मा ब्रह्म है और ब्रह्म हमारा आत्मा है अर्थात् आत्मा-परमात्मा एक ही है। एक अद्वितीय ब्रह्म अपनी माया से ४ रूप वाला हो जाता है **प्रथम चरण** - पहले चरण की जागृत स्थान है, बाह्य ज्ञान है, सात लोक इसके ७ अंग हैं, इसके १६ मुख (५ ज्ञाने० + ५ कर्मे० + ५प्राण + म०बु०चि०अ०), संसार के सभी विषयों का ग्रहण इन्हीं इन्द्रियों से होता है, स्थूल भोग है - (इन्द्रियों द्वारा सुख-दुःख ही भोग है) तथा इस प्रथम चरण का **विश्व** अथवा **वैश्वानर** नाम है, ये जागृत के सुख-दुःख का भोक्ता है **द्वितीय चरण** - इसका स्वप्न स्थान है, मन के भीतर ही स्वप्न का ज्ञान है, सूक्ष्म भोग है, ७ अंग व १६ मुख हैं। सूक्ष्म सुख-दुःख स्वप्न में भी होते हैं, इस दूसरे चरण का नाम **तैजस** है **तृतीय चरण** - जहाँ सोया हुआ पुरुष न स्वप्न देखता है और न कोई कामना करता है उसे स्वप्नावस्था कहते हैं, इस तीसरे चरण में जागृत और स्वप्न का ज्ञान एकरूप हो जाता है, सुषुप्ति में भिन्न-भिन्न ज्ञान नहीं रहते सब घनीभूत हो जाते हैं तथा सु० में केवल आनंद की ही प्रधानता रहती है। वहाँ स्थूल शरीर के रोग-बीमारी तथा सूक्ष्म शरीर के काम-क्रोध आदि दुःख भी नहीं रहते, केवल आनंद ही आनंद होता है। निद्रा से जा०-स्व० उत्पन्न होते हैं व इसी में लीन भी हो जाते हैं इसलिये निद्रा जा०-स्व० की माता है। निद्रा अवस्था में मनुष्य पशु-पक्षी आदि सभी सुखी हो जाते हैं, वहाँ आनंद का ही भोग होता है व आनंद की ही प्रचुरता होती है। अपने ज्ञान रूपी मुख से ही जीव आनंद का भोग करता है क्योंकि वहाँ इन्द्रियाँ तो हैं नहीं। **प्राज्ञ** नाम का अपनी आत्मा का ये तीसरा स्वरूप है, **यही सर्वज्ञ ईश्वर है।** यही जीवों की उत्पत्ति और लय रूपी कारण है। सुषुप्ति से ही जा०-स्व० की सृष्टि होती है तथा सुषुप्ति में ही लय हो जाती है **चौथा चरण** - ४थे चरण का वर्णन तीनों चरणों का निषेध करके करते हैं। वहाँ न तो बहिष्प्रज्ञ जागृत जगत है जिसका स्वामी विश्व है और न अन्तःप्रज्ञ स्वप्न है जिसका स्वामी तैजस है यानि वहाँ न विश्व है, न तैजस है और न सुषुप्ति अथवा प्राज्ञ ही है। जितना भी देखना-सुनना होता है वह जा०-स्व० में ही होता है वे इस अवस्था में हैं नहीं, वहाँ इ०म०बु० हैं नहीं तो देखे क्या ? इसलिये वह **अद्रष्ट, अव्यवहार्य** है, **एकात्म = अपने रहने में केवल ज्ञान स्वरूप आत्मा ही प्रमाण है।** वहाँ जा०-स्व०-सु० का प्रपंच नहीं है, वह शान्त अवस्था है। ये ४था चरण परमकल्याण/आनंद स्वरूप एक अद्वितीय है, ये सबका आत्मा एक है इसी को ४था माना गया है, वह हमारा तुम्हारा वास्तविक स्वरूप आत्मा है - इसको ब्रह्म कहते हैं, यही जानने योग्य है। अपने कल्याण के लिये जिसको जानकर जन्म-मरण से छुटकारा मिल जाता है अतः ओंकार को निमित्त बनाकर अकार-उकार-मकार के द्वारा ये आत्मा बताया गया है /// **अब विश्व-तैजस-प्राज्ञ तथा अकार-उकार-मकार का एकत्व बताते हैं** :- मात्रा ही पाद है व पाद ही मात्रा है १ इसमें अकार और विश्व की एकता बताते हैं, दोनों में पहली-मात्रा व प्रथम-पाद का एकत्व है व दोनों व्यापक हैं। जो अकार एवं विश्व की एकता को जानता है वो सब प्रकार की कामनाओं को प्राप्त कर लेता है २ जो दूसरा-पाद, स्वप्न स्थान वाला तैजस एवं दूसरी मात्रा उकार की एकता जानता है - वह ज्ञान की सम्पन्नि का उत्कर्ष करता है और सभी ज्ञानियों में वह अग्रगण्य माना जाता है ३ तृतीय-पाद, सुषुप्ति स्थान एवं प्राज्ञ तथा ओंकार की तीसरी मात्रा मकार *(जो जा०-स्व० को नापता है अथवा जा०-स्व० को अपने में लय करता है, ऐसे ही मकार में अकार-उकार भी लय हो जाते हैं)* का एकत्व बताया गया है - नापने अथवा अपने में लय करने के कारण। जो इस प्रकार मकार और प्राज्ञ की एकता करता है वह मानो सारे संसार को नाप लेता है, लय कर लेता है ४ जो अमात्र है, जिसमें कोई व्यवहार नहीं है वहाँ जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति का प्रपंच नहीं है, केवल कल्याण स्वरूप अद्वैत आत्मा ही है। इस प्रकार ओंकार अपनी आत्मा का ही स्वरूप बताया गया है। जो इस प्रकार से अमात्र और अपनी आत्मा का एकत्व जानता है वह अपनी आत्मा में अपनी आत्मा के द्वारा प्रवेश कर जाता है ///	